Vol. XX No. 1

SWAMI VIVEKANAND
2013

PANCHNAD
RESEARCH JOURNAL

- नरेन्द्र कुमार शर्मा
- बृज किशोर कुठियाला
- गिरीश उपाध्याय
- कृष्ण चन्द्र अरोड़ा
- रामदेव भारद्वाज
- अशोक पाण्डेय
- कृष्णचन्द्र पाण्डे
- हेमेन्द्र कुमार राजपूत
- दिनेश कुमार
- अनिल सौमित्र
- B.K. Kuthiala
- Prateek Bagi
- Pradeep Kumar & Jai Dev
- Vikas Saraf & Pawan Thakur
- सुरेन्द्र पॉल

Editors :
Shyam Khosla
B. K. Kuthiala

PANCHNAD RESEARCH INSTITUTE
Working Office :
1086, Sector 44, Chandigarh

पंचनद शोध संस्थान, चण्डीगढ़

संचालन समिति 2012

क्र.	नाम	पता	दूरभाष	ई-मेल
1	डॉ. बी. एल. गुप्ता	सी-30, अहिंसा विहार, सेक्टर-8, रोहिणी, नई दिल्ली	092123 37799	mangalayan@gmail.com
2	श्री दीनानाथ बत्रा	शिक्षा संस्कृति उत्थान न्यास सरस्वती बाल मंदिर, जी-ब्लॉक, नारियणा विहार, दिल्ली - 110028	098111 26445	dina_nathbatra@hotmail.com
3	श्री श्याम खोसला	ए-208, सुरजमल विहार दिल्ली - 110092	098996 12100	shyamkhosla@gmail.com
4	डॉ. अजय कुमार	बी-62, आनन्द विहार दिल्ली - 110092	098110 40985	ajaykge@hotmail.com
5	डॉ. भीम सेन	सेन नर्सिंग होम, कटारा शेर सिंह, अमृतसर	098724 24456	grays2rads@hotmail.com drbhimsenarora@gmail.com
6	डॉ. रजनीश अरोरा	434 मोता सिंह नगर, थण्डी सड़क, जालंधर	097790 22121	rajneesh.ptu@gmail.com
7	सी.ए. विक्रम अरोरा	2 टैगोर पार्क नियर मकसुदन, जालंधर	098141 66330	arora.vikram@yahoo.com
8	प्रो. बी. के. कुठियाला	ई-2/163 अरेरा कालोनी, भोपाल	097525 34999	kuthialabk@gmail.com
9	श्री राधेश्याम शर्मा	1037 सेक्टर-7, पंचकुला, हरियाणा	093120 83031	
10	श्री राजेश शर्मा	1261 सेक्टर 33-सी, चण्डीगढ़	098150 10200	rakwshsharma69@gmail.com
11	श्री केशव खुराना	फ्लैट 3, आई-ब्लॉक, युनिसिटी अपार्टमेंटस, जिराकपुर नियर, चण्डीगढ़	094174 21289	k.khurana@yahoo.co.in
12	श्री अशोक मलिक	1086/44 बी, चण्डीगढ़	098146 4077	ashokmalik111@gmail.com
13	प्रो. सी. एल. गुप्ता	विवेक कुटीर, समरहिल शिमला	094181 41898	clgupta@yahoo.co.in clgupta@gmail.com
14	श्री ऋषि गोयल	गीता निकेतन, आवासीय केम्पस, कुरूक्षेत्र	094160 36887	rishigoelkkr@gmail.com
15	प्रो. के. एल. भाटिया	307 सेक्टर-13, त्रिकोटा नगर पूर्व, सोम विहार मार्बल लेन, जम्मू - 180012	097960 85777	kishoribhatia@rediffmail.com

Vol. XX **No. 1**

SWAMI VIVEKANAND

Panchnad Research Journal
2013
पंचनद शोध पत्रिका

Editors
Shyam Khosla
B. K. Kuthiala

PANCHNAD RESEARCH INSTITUTE

Working Office :1086, Sector 44, Chandigarh

E-mail : panchnadshodh09@gmail.com
Telephone No. : 0172-4612774

Rs. 30/-

Contents

01.	स्वामी विवेकानन्द एक सागर के मोती : डॉ. नरेन्द्र कुमार शर्मा	1 - 2
02.	स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में-शिक्षक की भूमिका औरा जिज्ञासा जागरण : प्रो. बृजकिशोर कुठियाला	3 - 10
03.	इस्वामी विवेकानन्द की संचार दृष्टि : गिरीश उपाध्याय	11 - 14
04.	स्वामी विवेकानन्द विज्ञान, चेतना और दर्शन : कृष्ण चन्द्र अरोड़ा	15- 17
05.	व्यक्तित्व निर्माण-स्वामी विवेकानन्द के सूत्र-वर्तमान की प्रासंगिकता : डॉ. रामदेव भारद्वाज	18 - 24
06.	अवतारी पुरुष श्रीमद् विवेकानन्द स्वामी : अशोक पाण्डेय	25 - 27
07.	स्वामी विवेकानन्द और उनका शिक्षा दर्शन : डॉ. कृष्णचन्द्र पाण्डे	28 - 30
08.	हिन्दू राष्ट्र का महानायक : स्वामी विवेकानन्द : डॉ. हेमेन्द्र कुमार राजपूत	31 - 34
09.	आज की पत्रकारिता को विवेक आनंद की जरूरत : दिनेश कुमार	35 - 37
10.	स्वामी विवेकानन्द और उनका शिक्षा दर्शन : अनिल सौमित्र	38 - 42
11.	Dharm Based purpose of Life : Swami Vivekananda's Vision : Prof. B.K. Kuthiala	43 - 47
12.	Swamijis Teachings : That influenced me most : Prateek Bagi	48 - 49
13.	Relevance of Vivekananda's Thoughts in Present Perspective : Dr. Pradeep kumar & Dr. Jaidev	50 - 57
14.	Role of Swami Vivekananda's in Indian Educational System : Dr. Vikkas Saraf & Pawan Thakur	*58* - 62
15.	आस्वामी विवेकानन्द के विचारों पर आधारित हो देश की शिक्षा नीति : सुरेन्द्र पॉल	63-69

सम्पादक की कलम से.....

स्वामी विवेकानंद के सार्ध शती वर्ष में जब हम एक ओर स्वामीजी द्वारा प्रतिपादित आदर्शों, सिद्धान्तों एवं मूल्यों का पुनरावलोकन करते हैं तो ऐसा प्रतीत होता है मानों उनके द्वारा प्रतिपादित आदर्शों एवं सिद्धान्तों की दुहाई तो बार–बार और लगातार दी जाती है किन्तु धरातल के स्तर पर दृष्टि डालने से निराशा ही हाथ लगती है। चाहे वो आध्यात्म की बात हो, चरित्र की बात हो या धर्म की व्याख्या की बात हो, सभी क्षेत्रों में उदारता एवं स्पष्टता का दृष्टिकोण स्वामीजी ने प्रतिपादित किया। आधुनिकता के इस दौर में हमारे पुरातन विचार विलुप्त होते जा रहे हैं। वे विचार जिसने मानव चेतना को समझा और मानवता को जागृत किया, आज विस्मृत हो गये हैं। आज से 150 वर्ष पूर्व जन्में स्वामी विवेकानंद ने उसे जीवित किया था। उन्हीं विचारों को संचारित करने का उद्देश्य बनाते हुए पंचनद ने विवेकानंद के मानव कल्याणकारी वचनों और उपदेशों के विभिन्न आयामों को प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। स्वामीजी के विचार निःसंदेह मानव चेतना को विकसित करने के लिए उपयोगी होंगे।

आज के समाज में शिक्षक की भूमिका महत्वपूर्ण है। सफल शिक्षक ही सफल राष्ट्र का निर्माण कर सकता है। स्वामीजी के विचार श्रेष्ठ शिक्षक बनाने और उसकी भूमिका निर्धारित करने में सहायक हैं। आधुनिक समाज में संचार और संवाद का होना आवश्यक है। स्वामीजी की संचार दृष्टि आधुनिक समाज के सफल निर्माण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विज्ञान चेतना और दर्शन का समन्वय होना चाहिए। विश्व चेतना का होना ही विज्ञान की प्रगति है। ये विचार भी आधुनिकता के इस दौर में प्रासंगिक हैं। प्रत्येक व्यक्ति का अपना आदर्श व्यक्तित्व होना चाहिए। अपने व्यक्तित्व से ही भारत राष्ट्र के महानायक के रूप में स्वामीजी ने सम्पूर्ण विश्व को अपना परिचय दिया। आज के समय में विवेकानंद के इन विचारों का होना अत्यंत आवश्यक है। हमने इस शोध पत्रिका के द्वारा उसे लोगों तक पहुँचाने का प्रयास किया है।

पंचनद शोध संस्थान की वार्षिक शोध पत्रिका के इस अंक में स्वामी विवेकानन्द के विचारों के विभिन्न पहलुओं पर विस्तृत चर्चा प्रस्तुत है। लेखकों ने विवेकानन्द के उपदेशों को अनेक रूपों में प्रयोग करने वाले विद्वानों ने इसकी अपार संभावनाओं का वर्णन करते हुए इसे मानवता के लिए अत्यंत लाभकारी बताया है। स्वामी जी के विचार अत्यंत गंभीर और विशाल हैं। इसका वर्णन करना जटिल है किन्तु लेखकों के द्वारा किये गये प्रयास सराहनीय है। आपकी टिप्पणियों और सुझावों की प्रतिक्षा रहेगी।

सम्पादक

स्वामी विवेकानन्द - एक सागर के मोती

✍ डॉ.नरेन्द्र कुमार शर्मा

भारत की पवित्र वसुंधरा पर अनेकों महापुरुषों ने अवतार लिया है, जिन्होने अपनी बुद्धि से, चिन्तन से, कर्म से, समर्पण से, त्याग से – जो कुछ किया है वह हमारे आध्यात्मिक एवं सांस्कृतिक पूंजी की विरासत है। भगवद् गीता की भाषा में कहें तो जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि हुई, भगवान ने अवतार लेकर पृथ्वी को पाप कर्म एवं अधर्म से मुक्त किया। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में जब हम विचार करते हैं तो यह प्रतीत होता है कि स्वामी विवेकानंद जैसे महापुरुषों की प्रासंगिकता आज कहीं अधिक है, बल्कि यह लगता है कि ये महापुरुष समय से पहले आ गये थे। 19वीं शताब्दी से कहीं अधिक जरुरत स्वामी जी की आज महसूस होती है।

स्वामी विवेकानंद जी ने मनुष्य के समग्र विकास के लिये 'वेदान्त' का सहारा लिया और 'अद्वैत वेदान्त' को व्यावहारिक बनाने के लिये उसकी वैज्ञानिक व्याख्या की। वेदान्त के ऐसे महान विचारक, भारतीय संस्कृति के विशिष्ट उद्घोषक, मानवता के महान पुजारी, समाजवादी विचारधारा के विराट विचारक अपने ओजस्वी विचारों से देश की भावी युवा पीढ़ी के लिये एक प्रकाश स्तंभ हैं जिसकी रोशनी से सभी भारतवासियों का मार्ग प्रशस्त होता रहेगा। इस लेख के माध्यम से स्वामी विवेकानंद जी विभिन्न विषयों पर दिये गये विचार हमारे पथ प्रदर्शन में उपयोगी होंगे।

प्रतिभा जिसकी धरोहर होती है आदर्श जिसके अनुगामी होते हैं, ज्ञान जिनका सहोदर होता है, विवेक और संयम जिसकी पूजा करते हैं, वह विनयशील व्यक्तित्व सब कुछ होकर भी संत होता है। स्वामी विवेकानंद इस पुण्यधरा पर इसी रुप में अवतरित हुये और उनका व्यक्तित्व एवं कृतित्व समस्त संसार के लिये एक उदाहरण बन गया। स्वामी विवेकानंद के कुछ विभिन्न विषयों पर विचार उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है।

1. ईश्वर में विश्वास – दर्शन शास्त्र का स्थान चाहे जो भी हो, तत्वज्ञान का स्थान चाहे जो भी हो पर जब तक इस लोक में ''मृत्यु'' नाम की वस्तु है, तब तक मानव हृदय में 'दुर्बलता' जैसी वस्तु है और जब तक मनुष्य के अंत करण में उसका दुर्बलताजनित करुण क्रंदन बाहर निकलता है, तब तक इस संसार में ईश्वर में विश्वास भी कायम रहेगा।

2. शिक्षा – हमें ऐसी शिक्षा की जरुरत है जिससे चरित्र निर्माण हो सके, जो मस्तिष्क की शक्ति बढ़ा सके, जो मानव की बुद्धि का विकास कर सके जिसके आधार पर मनुष्य स्वयं अपने पैरों पर खड़ा हो सके।

3. आवश्यकता – आज हमारे देश की आवश्यकता है लोहे की मांस पेशियाँ और फौलाद के स्नायु तंत्र, ऐसी प्रचंड इच्छा शक्ति जिसे कोई रोक न सके, जो समस्त विश्व के रहस्यों की गहराई में जाकर अपने उद्देश्यों को सभी प्रकार से प्राप्त कर सके। इस हेतु समुद्र के तल तक क्यों न जाना पड़े या मृत्यु का सामना क्यों न करना पड़े।

4. गरीबी – भारत वर्ष में सभी अनर्थों की जड़ है– जन साधारण की गरीबी । सामंती शक्ति और विदेशी विजेतागण सदियों से उन्हें कुचलते रहे। जिसके फलस्वरुप भारत के गरीब बेचारे यह तक भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं। हमारा सबसे बड़ा राष्ट्रीय पाप जनसमुदाय की उपेक्षा है और यह भी हमारे पतन का कारण है। भारत में दो बड़ी बुरी बाते हैं। नारी का तिरस्कार और गरीबों को जाति भेद से पीसना।

5. चरित्र – यदि किसी मनुष्य के चरित्र को जांचना चाहते हो तो उसके बड़े कार्यों से जांच मत करो। एक मूर्ख भी किसी विशेष अवसर पर बहादुर बन जाता है। मनुष्य के साधारण कार्यों की जांच करो और असल में वे ही ऐसी बातें हैं, जिनसे तुम्हें एक महान् पुरुष के वास्तविक चरित्र का पता लग सकता है। आकस्मिक अवसर तो छोटे से छोटे मनुष्य को भी किसी न किसी प्रकार का बड़प्पन दे देते हैं, परन्तु वास्तव में बड़ा तो वही है, जिसका चरित्र सदैव और सब अवस्थाओं में महान् रहता है।

6. गृहस्थ जीवन – एक गृहस्थ का जीवन भी उतना ही श्रेष्ठ है, जितना कि एक ब्रह्मचारी का है। यह कहना व्यर्थ है कि ''गृहस्थ से सन्यासी श्रेष्ठ है।'' संसार को छोड़ कर, स्वच्छंद और शांत जीवन में रहकर ईश्वर उपासना करने की अपेक्षा संसार में रहते हुये उपासना बहुत कठिन है।

7. आदर्श पुरुष – आदर्श पुरुष वे हैं, जो परमशांति एवं निस्तब्धता के बीच भी तीव्र कर्म का तथा प्रबल कर्मशीलता के बीच भी मरुस्थल की शांति एवं निस्तब्धता का अनुभव करते हैं।

8. हिन्दू – हिन्दू का यह विश्वास है कि वह आत्मा है। उसको शस्त्र काट नहीं सकते, अग्नि जला नहीं सकती, जल भिगो नहीं सकता और वायु सुखा नहीं सकती। हिन्दू धर्म किसी व्यक्ति पर आश्रित नहीं है। पुराणों के दार्शनिक शास्त्र के मूल्यांकन के उद्देश्य से हमें इस प्रश्न पर विचार करने की जरुरत नहीं है कि उसमें जिन व्यक्तियों का वर्णन है वे सचमुच मनुष्य थे या काल्पनिक पात्र। पुराणों का उद्देश्य मनुष्य को शिक्षा देना है। जिन ऋषियों ने उनकी रचना की है उन्होंने कुछ ऐतिहासिक व्यक्तियों को लिया, उनके ऊपर बिल्कुल अपनी इच्छा के अनुसार सर्वोत्तम अथवा सबसे हीन गुणों का आरोपण किया और मनुष्य जाति के लिये आचरण, आचरण के लिये नैतिक नियम निर्धारित किये।

9. मूर्ति पूजा – हम सब जन्म से ही मूर्तिपूजक है। मूर्तिपूजा अच्छी है क्योंकि यह अत्यंत स्वाभाविक है। इस उपासना से परे कौन जा सकता है? केवल वही जो सिद्ध पुरुष है, जो अवतारी पुरुष है। बाकी सब मूर्ति पूजक ही हैं। जब तक यह विश्व और इसकी मूर्त वस्तुयें हमारे सामने खड़ी हैं तब तक हममें से प्रत्येक मूर्ति पूजक है। स्वयं यह विश्व ही एक विशाल देव मूर्ति है, जिसकी हम पूजा कर रहे है।

10. परोपकार – परोपकार का प्रत्येक कार्य, सहानुभूति का प्रत्येक कर्म, प्रत्येक शुभ कार्य हमारे अहंभाव को प्रतिक्षण घटाता है और यह भावना पैदा करता है कि हम न्यूनतम और तुच्छतम हैं और इस लिये यह सब कार्य श्रेष्ठ हैं। ज्ञान, भक्ति और कर्म तीनों ही इस बिन्दु पर मिलते है। यही परोपकार है।

भारत के युवा हृदय सम्राट स्वामी विवेकानंद जी का 150वां जयंती समारोह एक ऐसा ही दुर्लभ अवसर हमारे देश के भाग्य का द्वार खटखटा रहा है।

✍ **लेखक शासकीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय, पटियाला में प्राध्यापक हैं।**

****

स्वामी विवेकानन्द की दृष्टि में –

शिक्षक की भूमिका और जिज्ञासा जागरण

✍ प्रो. बृज किशोर कुठियाला

प्राणी जगत के सीखने–सिखाने के परिदृश्य पर ध्यान दें तो स्वाभाविक रूप से कुछ प्रश्न उठते हैं :

- बीज ने पेड़ बनना कैसे सीखा ?
- पक्षी को घोसला बनाना किसने सिखाया ?
- साइबेरिया की सारस ने हजारों मील दूर यात्रा करने का मार्गदर्शन कहॉ से लिया ?
- एक कोशिका को बार–बार विभाजित होना कैसे मालूम पड़ा ?
- एक सिंह को अपने क्षेत्र की रक्षा का दायित्वबोध कहां से हुआ ?
- व्हेल मछली को सैकड़ों मील दूर अपने साथियों से वार्ता करने की कला कैसे आई?
- मानव के नवजात शिशु ने रोने, मुस्कराने, खिलखिलाने का प्रशिक्षण कहां से लिया ?

ऐसे असंख्य प्रश्न उठकर खड़े होते हैं, यदि हम यह मानकर चलें कि सीखना और सिखाना एक व्यवस्थित कार्य है। सभी प्रश्नों के उत्तर स्वयं प्राप्त हो जाते हैं, यदि वेदों की इस बात को मानकर चलें कि जीव में ज्ञान तो पहले से उपलब्ध है केवल उसको प्रस्फुटित होने के अवसर चाहिए।

जैविक विकास की प्रक्रिया में प्रकृति में ऐसे प्राणी का उद्‌भव हुआ जो अन्य सब जीवों से सर्वाधिक विकसित माना जाता है। ऐसी मानव जाति में अनेक विशेष क्षमताऍ हैं जिनमें एक अत्यंत महत्वपूर्ण शक्ति विकसित हुई है जिसे साधारण भाषा में सीखना कह सकते हैं। मनुष्य न केवल पूरा जीवन सीखता रहता है बल्कि उसकी सीखने की क्षमता भी प्रकृति के शेष सभी जीवों से सर्वाधिक विकसित है। इसी अद्वितीय क्षमता के कारण सर्वमान्य धारणा बनी है कि मनुष्य का जन्म केवल मात्र जीने के लिए नहीं है अपितु उसके जीवन का उद्‌देश्य अपने जीवन काल में ही अपनी मनुष्यता को विकसित करने का भी है।

हजारों सालों के मानव इतिहास में ज्ञान का अथाह भण्डार निर्मित हुआ जिसमें लगातार वृद्धि होती जा रही है। मानव समाज में प्रवेश पाने वाले हर व्यक्ति को कुछ–न–कुछ न्यूनतम ज्ञान की आवश्यकता जीने के लिए रहती है, परन्तु सभ्य समाज के स्तर तक पहुँचने के लिए उसे और अधिक ज्ञान की आवश्यकता रहती है। चूँकि मानव समाज परस्पर निर्भरता के आधार पर रचित है इसलिए समाज ने अपना दायित्व समझकर ऐसी व्यवस्थाएँ बनाईं जिनसे हर नवागंतुक व्यक्ति को निर्धारित और उससे अधिक ज्ञान देने के लिए रचनाएँ बनीं, जिन्हें आज हम विद्यालय, महाविद्यालय या विश्वविद्यालयों के नाम से जानते हैं। पूरे विश्व में गंभीर प्रयास चल रहे हैं कि ऐसी ज्ञान प्राप्ति की संस्थाऍ बढ़ें और इनमें शिक्षा प्राप्त करने वालों की संख्या भी अधिकतम हो। सत्य तो यह है कि वर्तमान में विकसित या अविकसित समाज होने का मुख्य मापदण्ड यही है कि कितने प्रतिशत व्यक्तियों ने किस स्तर तक शिक्षा ग्रहण की। इस समस्त शिक्षा व्यवस्था का आधार शिक्षा देने वाला अध्यापक है।

शिक्षा तो अभी होनी है

समाज के शिक्षित वर्ग के एक अंग को इस शिक्षा के प्रसार के लिए दायित्व दिया जाता है। वर्तमान संदर्भ में शिक्षक की भूमिका निर्धारित प्रतिमानों को मानते हुए हर वर्ष शिक्षार्थियों के कुछ समूहों को ज्ञान हस्तांतरित करने तक सीमित रह जाती है। वास्तविक स्थिति का तथ्यात्मक विवरण करें तो यह कहा जा सकता है कि वर्तमान में अध्यापन देने और लेने का व्यापार है। अर्थ का आदान–प्रदान और ज्ञान का आदान–प्रदान परस्पर जुड़ा हुआ और समानान्तर चलता है। शिक्षक को वेतन मिलता है और वह पढ़ाता है और विद्यार्थी शुल्क देता है और कुछ जानकारियॉ और कुछ व्यावहारिक कलाएँ सीख लेता है। परिणामस्वरूप ज्ञान का भण्डार तो अथाह एकत्रित हो गया परन्तु विकास की दृष्टि से मानव वहीं का वहीं रह गया है। कोरी ज्ञान आधारित संस्कृति के कुप्रभावों की विवेचना करते हुए स्वामी विवेकानन्द ने पश्चिम के लोगों को समझाने का प्रयास किया ''ज्ञान का विकास जिस दिशा में हुआ है उसके परिणामस्वरूप सैकड़ों विज्ञानों की खोज हुई है, जिसका प्रभाव केवल इतना ही हुआ कि एक छोटे वर्ग ने शेष बहुत बड़े समाज को अपना दास बना लिया है।'' इसी संदर्भ में स्वामीजी ने यह भी कहा कि ''समस्त शिक्षा और ज्ञान के बावजूद यह मान्यता है कि यदि कोई मनुष्य मशीनें बनाने में सफल होता है तो वह उसकी बहुत बड़ी उपलब्धि है।'' निष्कर्ष के रूप में स्वामीजी ने कहा ''विश्व में शिक्षा तो अभी आनी है''।

मानव समाज के सर्वांग विकास के संदर्भ में यदि शिक्षक की भूमिका का विश्लेषण करें तो वर्तमान शिक्षा व्यवस्था के तीन मूलभूत आधार बिन्दुओं पर केन्द्रित होना अनिवार्य लगता है– पहली धारणा मानव शिशु के जन्म के समय उसकी मानसिक स्थिति के संबंध में है। पश्चिम के दर्शन में इस विषय में अरस्तू ने माना कि जन्म के समय बच्चे का मस्तिष्क कोरा होता है अर्थात् अनुभवहीन होता है। रोम की भाषा में इस स्थिति को 'टेबुला रासा' कहा जाता है । वास्तव में टेबुला रासा मोम की उस पट्टिका को कहा जाता है जिस पर नुकीली कलम से लिख सकते हैं और गरम करें तो लिखा हुआ मिट जाता है और उसी सतह पर फिर से लिख सकते हैं। उस समय के कुछ दर्शनकारों ने यह भी माना कि मरने पर मस्तिष्क पर लिखा हुआ सबकुछ मिट जाता है इसलिए फिर जन्म लेने पर कोरे कागज की तरह मस्तिष्क कुछ भी लिखने के लिए उपलब्ध रहता है। इस प्रकार से यह माना गया कि मनुष्य या अन्य जीवों में अंतर्निहित ज्ञान शून्य है और जन्म के बाद से उसको वातावरण, समाज और परिस्थतियों के अनुसार ढाला जा सकता है। ग्यारहवीं शताब्दी में प्राचीन ईराक के विद्वान इब्न सिना ने इस परिकल्पना को और विस्तार देते हुए कहा कि मनुष्य की क्षमताएँ शिक्षा के माध्यम से ही जागृत होती हैं जिनमें तर्क, निरीक्षण और दिए गए ज्ञान की मुख्य भूमिका होती है। बारहवीं शताब्दी में इस्लामिक विद्वान और उपन्यासकार इब्न तूफेल ने उपन्यास की कहानी के द्वारा कोरे मन की धारणा को स्थापित किया और कहा कि सब कुछ ही सिखाने की आवश्यकता है।

तेरहवीं शताब्दी में सन्त थॉमस हकिनास ने इस विश्वास को इसाइयत के विचार से जोड़ा और पहले के विश्वास को खण्डित किया कि पृथ्वी पर आने से पहले मनुष्य का मन अन्तरिक्ष में रहता है और जन्म के समय इसका शरीर में प्रवेश होता है। सत्रहवीं सदी में इसी धारणा को और अधिक वैज्ञानिक रूप में प्रस्तुत किया गया कि जन्म के समय मनुष्य का मस्तिष्क कोरी स्लेट की तरह होता है जिसमें जानकारियों के विश्लेषण की समझ नहीं होती है और जन्म लेने के बाद उसको अपनी इन्द्रियों के माध्यम से ये सब सीखना होता

है। मनोवैज्ञानिक फ्रायड द्वारा दिए गए विचारों में भी कोरी स्लेट का सिद्धान्त बार–बार आता है। फ्रांस के रूसो ने भी इसी तर्क के आधार पर कहा कि मनुष्य को सब कुछ सीखना पड़ता है। आज तक भी हमारी शिक्षा का आधार यही माना जाता है कि मानव को शून्य से ही सीखना–सिखाना प्रारंभ करना है।

मन कोरा कागज नहीं

परन्तु धीरे–धीरे मनोविज्ञान, तंत्रिका विज्ञान, जीव विज्ञान आदि अनेक क्षेत्रों के वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध करना प्रारंभ किया है कि जन्म से पहले ही बच्चे को कुछ–न–कुछ ज्ञान होता ही है। उदाहरण के लिए मनोवैज्ञानिक स्टीवन पिन्कस ने सिद्ध किया कि बच्चे का मस्तिष्क बोलना सीखने के लिए तैयार होता है परन्तु पढ़ना और लिखना उसको सिखाना पड़ता है। अब तो विज्ञान यह भी मानकर चल रहा है कि गर्भ में रहते हुए बच्चा संवेदनाओं को न केवल प्राप्त करता है, उनका विश्लेषण और संग्रहण भी करता है।

स्वामी विवेकानन्द ने कोरे मन की अवधारणा को नकारते हुए बार–बार कहा कि सम्पूर्ण ज्ञान तो मनुष्य के अंदर ही उपलब्ध है केवल उसको प्रस्फुटित होने के अवसर चाहिए। इस संदर्भ में स्वामीजी ने कहा ''समस्त ज्ञान मनुष्य के अंदर ही है कुछ भी ज्ञान बाहर से नहीं आता वह सब अन्दर ही है । जब हम कहते हैं कि मनुष्य ने जाना है तो मनोविज्ञान की भाषा में वास्तव में इसका अर्थ है कि उसने ''खोजा है'' उघाड़ा है। मनुष्य जो सीखता है वास्तव में वह उसकी उस खोज का परिणाम है जो वह अपनी आत्मा के आवरण को उतारकर प्राप्त करता है। यह अनंत ज्ञान का भण्डार है।'' इसी परिपक्व धारणा की प्रेरणा स्वरूप स्वामीजी ने सुप्रसिद्ध उक्ति की रचना की ''शिक्षा मनुष्य की निहित सम्पूर्णता की अभिव्यक्ति है।'' मुण्डकोपनिषद ने भी दो प्रकार की विद्या की चर्चा की है 'परा' अर्थात बाह्य जगत की समझ और 'अपरा' अर्थात् भीतर की आत्मा का ज्ञान। बौद्ध मत पर आधारित प्राचीन चीन ने भी इसी तरह की व्याख्या 'यन' और 'यीन' के रूप में की है।

आज का विज्ञान स्वामी विवेकानन्द के इस विश्वास को सुदृढ़ करता है। राबर्ट ओरिस्टेन और डॉ. रोजर्स स्पेरी जिन्हें नोबल पुरस्कार प्राप्त हुआ है, ने कहा है कि मस्तिष्क का दायां भाग बाएं भाग से भिन्न रूप से जानकारियों को ग्रहण करता है। यह भी सिद्ध हो चुका है कि मस्तिष्क का बायां भाग भौतिक ज्ञान को प्राप्त करता है जबकि दायां भाग अध्यात्म से सम्बन्धित रहता है। यह भी बार–बार सिद्ध हुआ है कि आज की शिक्षा व्यवस्था मस्तिष्क के बाएँ भाग का ही प्रयोग करती है जबकि दायां भाग लगभग व्यर्थ रहता है।

जब स्वामीजी यह कहते हैं कि सम्पूर्ण ज्ञान मनुष्य में ही उपलब्ध है तो कई प्रश्नों के उत्तर स्वयं मिल जाते हैं। यह समझ में आ जाता है कि एक बीज पेड़ कैसे बना?जन्म के पहले वर्ष में सारस ने हजारों मील दर स्थानान्तरण का मार्ग कैसे पा लिया ? स्वामीजी ने इसकी व्याख्या करते हुए कहा ''एक बरगद का सम्पूर्ण पेड़ जो कई एकड़ भूमि पर फैला है एक समय राई के दाने से भी छोटा बीज था। सम्पूर्ण वृक्ष की ऊर्जा उसके अंदर निहित थी।'' स्वामीजी का अगला वाक्य जितना दार्शनिक है उतना ही वैज्ञानिक भी है ''हम जानते हैं कि विशाल ज्ञानशक्ति कोशिका में जैविक द्रव्य से बनी कुण्डली रूप में विद्यमान है।'' आज की भाषा में इसे हम 'जीन' या 'क्रोमोसोम' कहते हैं। जिस प्रकार से विज्ञान की प्रगति हो रही है हमें विश्वास रखना चाहिए कि अनुवांशिक वैज्ञानिक जब अंतिम सत्य को प्राप्त करेंगे तो वे स्वामी विवेकानन्द की बात को ही दोहराएंगे।

वर्तमान शिक्षा प्रणाली जिसको भारत जैसे देश ने भी पश्चिम का अनुकरण करके

बनाया, का आधारभूत सिद्धान्त कि मानव शिशु का मस्तिष्क कोरा कागज होना न केवल अधूरी कल्पना है बल्कि कहीं–न–कहीं घोर असत्य भी है। इस असत्य पर आधारित सारी शिक्षा व्यवस्था और उसमें शिक्षक की भूमिका भी विकृत, अधूरी और अहितकारी ही होगी, ऐसा कहना अतिशंयोक्ति नहीं होना चाहिए। दूसरी ओर मनोविज्ञान, मानव विज्ञान, जीव विज्ञान, भौतिकी और दर्शन द्वारा पुष्ट आधारित स्वामी विवेकानन्द की यह अवधारणा कि मनुष्य के अंदर पहले से उपलब्ध ज्ञान के भण्डार को फूल की तरह खिलने की अवस्थाएँ बनाना ही शिक्षा है, तो एक अलग तरह की शिक्षा व्यवस्था की रचना करने की आवश्यकता पड़ती है और उस व्यवस्था में शिक्षक की भूमिका देने–लेने की, कर्मचारी की या अध्यापक की न होकर कुछ और ही होगी।

मनुष्य जन्म से पापी नहीं

वर्तमान शिक्षा की दूसरी अनुचित मौलिक अवधारणा यह मानना है कि शिक्षा का उद्देश्य मानव–पशु को मनुष्य बनाना है। इस अवधारणा का मूल स्रोत पश्चिम के प्राचीन सामाजिक वैज्ञानिकों की अवधारणा है, जिन्होंने माना कि मनुष्य एक सामाजिक पशु है। उन्होंने इस बात को सिद्ध करने का प्रयास किया कि जन्म के समय नवजात शिशु अन्य प्राणियों की तरह पशु मात्र होता है और धीरे–धीरे सामाजीकरण की प्रक्रिया से उसे सामाजिक बना लिया जाता है। अरस्तू जैसे कुछ विद्वानों ने मनुष्य को राजनीतिक प्राणी माना। जबकि फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिकों ने जैविक पशु माना, बेन्जामिन फ्रैन्कलिन ने औजार बनाने वाला पशु और टॉफलर ने कहा कि मनुष्य तो आर्थिक प्राणी है। विश्व की दो प्रमुख प्रचलित राजनीतिक व सामाजिक अवधारणाओं– पूँजीवाद और साम्यवाद में या तो मनुष्य की अर्थ आधारित कल्पना की गई या उसे राजनीतिक इकाई माना गया।

मानव समाज का एक बहुत बड़ा वर्ग आज भी यह मानकर चलता है कि मनुष्य का जन्म पाप के कारण, पापी दुनिया में और पापी के रूप में ही होता है इसलिए जीवन में उसको इन्द्रिय भोग ही प्राप्त करने का उद्देश्य रखना चाहिए। पश्चिम के ही बहुत से विद्वानों ने इन परिकल्पनाओं का खण्डन किया है। पी.एस. इलियट ने कहा कि इस प्रकार की विकृत धारणाओं के आधार पर समाज में खोखला व्यक्तित्व (Hollow Man) बनता है। पश्चिम के अपने प्रवास में स्वामी विवेकानन्द ने उनके इस विश्वास का प्रभावी खण्डन किया और कई बार घोषणा की और कहा ''हे इस पृथ्वी पर उत्पन्न देवताओं–मनुष्य को पापी कहना घोर पाप है। यह मनुष्य की मूल प्रकृति का घोर अपमान है।'' उन्होंने यह भी भविष्यवाणी की कि एक शताब्दी के अंदर ही मनुष्य की यह नकारात्मक परिकल्पना अंत को प्राप्त करेगी। आज ऐसा ही होता दिख रहा है।

एक विचार के अनुसार जहाँ मनुष्य को पापी माना गया है वहीं वेद मनुष्य को परमात्मा स्वरूप मानते हैं। आज की शिक्षा व्यवस्था मनुष्य को कुछ बनने के लिए प्रेरित करती है जबकि वास्तव में मनुष्य की शिक्षा का उद्देश्य अपने को पहचानने का होना चाहिए। यूनेस्को ने भी शिक्षा पर प्रकाशित अपनी रिर्पोर्ट का शीर्षक दिया था ''कुछ होने के लिए सीखना'' न कि कुछ बनने के लिए सीखना''(Learning to Be and not Learning to Do)। इसी विषय में हार्वर्ड विश्वविद्यालय में विद्वानों को स्वामीजी ने समझाया कि ''मनुष्य में जो देवत्व है उसी की अभिव्यक्ति सभ्यता है।'' उन्होंने पूछा इतनी महान सभ्यतायें किस कारण से नष्ट हुईं ?और उत्तर में कहा ''क्योंकि उन सभ्यताओं का आधार भौतिकवाद था, इस कारण से वे भौतिक सुखों के लिए आपस में लड़कर मर मिटे।''

आज पूरे विश्व में मनुष्य की वैदिक अवधारणा को धीरे–धीरे स्वीकृति प्राप्त हो रही है। ब्रिटेन के मनोवैज्ञानिक आर.डी. लेंग आंतरिक ज्योति की बात करते हैं, वहीं अमेरिकन मनोवैज्ञानिक अब्राहम मास्लो आत्म सिद्धि की बात करते हैं और जैकब नीडलमैन आंतरिक रूपांतर का प्रतिपादन करते हैं। मास्लो लिखते हैं ''फ्रायड ने मनोविज्ञान का रूग्ण आधा पक्ष प्रस्तुत किया और अब हमारा दायित्व हैं कि हम शेष आधे को स्वस्थ्य मनोविज्ञान से पूर्ण करें।'' आर.डी लेंग ने फ्रायड की उस अंधे व्यक्ति से तुलना की है जो अन्य अर्ध–अंधे व्यक्तियों को रास्ता दिखा रहा है। ऐसा कहा जाता है कि उपनिषदों में भी यह बताया गया है कि जिस गुरू को स्वयं अनुभूति नहीं हुई होती वह वैसा ही है जैसे एक अंधा दूसरे अंधे को मार्ग दिखाए और दोनों का ही विनाश हो। जिस प्रकार मनुष्य के मस्तिष्क की अत्यंत त्रुटिपूर्ण समझ के आधार पर बनाई गई शिक्षा व्यवस्था विकृत होगी ही, उसी प्रकार मानव की नैसर्गिक प्रकृति को पूरा पशुवत मानकर यदि रचना बनती है तो वह भी अत्यंत विकृत और विनाशकारी होगी। ऐसी शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक समाज के कल्याण का साधन प्रशस्त करेगा या विनाश का, इसका निर्णय करना कठिन नहीं है।

धर्म विहीनता या धर्म निरपेक्षता

पश्चिम से प्रभावित वर्तमान भारतीय शिक्षा प्रणाली में अध्यापक की भूमिका के विश्लेषण का तीसरा विचारणीय बिन्दु उसमें धर्म के प्रति भाव का है। अंग्रेजी के शब्द 'सेकुलरिज्म' का पूर्ण रूप से गलत अर्थ निकालते हुए हमनें ऐसी शिक्षा व्यवस्था की रचना की जो कि धर्म विहीनता को प्रचारित व स्थापित करती है। बौद्धिक वर्ग, मीडिया और विद्वानों ने 'धर्म' शब्द को अंग्रेजी के 'रिलीजन' शब्द के समानान्तर खड़ा कर दिया और नैसर्गिक धार्मिकता को साम्प्रदायिकता का रंग दे दिया। इस विश्वास के प्रतिपादन में भारत के उच्चतम न्यायालय द्वारा दी गई 'धर्म' शब्द की व्याख्या को भी उपेक्षित किया। वास्तव में वेदों पर आधारित ज्ञान से प्रेरणा लेते हुए स्वामी विवेकानन्द ने धर्म की व्याख्या उन नियमों और संहिताओं के रूप में की जो प्रकृति में करोड़ों वर्षों से प्रचलित हैं।

प्रकृति का एक शाश्वत नियम सह–अस्तित्व का है और इसका वैज्ञानिक आधार लगभग हर धार्मिक ग्रन्थ में प्रतिपादित है। बौद्ध दर्शन में इसे ''प्रतीत्यससमुस्पाद'' अर्थात सबकुछ सब पर निर्भर है– इस सृष्टि में सब कुछ आपस में सम्बन्धित माना गया है। आज भौतिकशास्त्र के अणु वैज्ञानिकों ने बार–बार इस सिद्धान्त को सिद्ध किया है। परन्तु धर्म निरपेक्षता के भ्रमित आडम्बर में वर्तमान भारतीय शिक्षा पद्धति इस प्रकार के धार्मिक सिद्धान्तों को शिक्षा का भाग न बनने देने के लिए संकल्पित है। जब प्रकृति के स्थापित और शाश्वत नियम ही शिक्षा का अंग नहीं बनेंगे तो आज का विद्यार्थी, अध्यापक, शोधकर्ता और विद्वान प्रकृति को समझ ही नहीं सकते, उससे सामंजस्य बना ही नहीं सकते। इस धर्म विहीनता का आडम्बर आज भारतीय समाज को विज्ञान सिद्ध तथ्यों से भी परहेज करना सिखाता है। ऐसा लगता है कि कुछ राजनीतिज्ञों की धर्म के विषय में अधूरी समझ ने भारतीय शिक्षा पद्धति को पूजा पद्धतियों के कर्मकाण्ड को धर्म से जोड़कर प्रस्तुत कर दिया है। इससे पूरे शैक्षिक वातावरण में अधूरापन और विकृति व्याप्त हो गई है। पंथ निरपेक्ष होना तो वांछनीय हो सकता है परन्तु उसको धर्म विहीनता मान लेना गहन चिन्ता का विषय है।

स्वामी विवेकानन्द ने बार–बार धार्मिक शिक्षा की अनिवार्यता के उपदेश दिये। स्वामी विवेकानन्द ने बड़ी कुशलता से वेदों द्वारा प्रतिपादित ज्ञान–विज्ञान को उनके समय के विज्ञान के रूप में प्रस्तुत करके यह सिद्ध किया

कि धर्म और विज्ञान में अटूट सम्बन्ध है। उल्लेखनीय है कि भारत के पूर्व राष्ट्रपति और विश्व विख्यात दार्शनिक सर्वपल्ली राधाकृष्णन ने लिखा था कि ''विवेकानन्द ने यह सिद्ध किया है कि हिन्दू धर्म विज्ञान सम्मत भी है और लोकतंत्र का समर्थक भी।'' दोनों महापुरूषों ने बार–बार यह भी कहा कि वर्तमान में हिन्दू धर्म में कई दोष आ गये हैं। वास्तव में हिन्दू धर्म वह है जो हमारे महान मुनियों को अभिप्रेत था।

विज्ञान एवं आध्यात्म

शिक्षा के विषय में स्वामीजी की एक और बात वैश्विक स्तर पर विचारणीय है। उन्होंने पश्चिम में अपने भाषणों में बार–बार कहा कि उस समाज को धार्मिक शिक्षा की आवश्यकता है और भारत में अपने उद्‌बोधनों में उन्होंने विज्ञान की शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। यह बात पुरानी है और इन 150 वर्षों में हमने ऐसी शिक्षा प्रणाली बनाई जो न तो विज्ञान को पूरी तरह समझाती है और धर्म तो उसके लिए अश्पृश्य है। जो धर्म उस समय समाज में स्वामीजी को दिखता था वह भी लुप्त हो गया। परिणामस्वरूप आज का अध्यापक और विद्यार्थी दोनों ही विज्ञानहीन और धर्महीन बनते जा रहे हैं।

स्वामी विवेकानन्द की एक अत्यंत महत्वपूर्ण उपलब्धि यह रही है कि उन्होंने यह सिद्ध किया कि धार्मिक मान्यताओं में भी वैज्ञानिक आधार है। पश्चिम के अनेक वैज्ञानिकों से वार्तालाप में उन्होंने उस समाज के इस विश्वास को खण्डित किया कि विज्ञान और धर्म एक दूसरे के प्रतिरोधी हैं। वर्तमान के अनेक वैज्ञानिकों, जिनमें बहुत से नोबल पुरस्कार विजेता हैं, ने बार–बार इस बात को माना कि भारत के आध्यात्म का आधार ही विज्ञान है और विज्ञान का अगला कदम आध्यात्म में ही है। विसल टेलबोट ने लिखा है कि ''सबसे महत्वपूर्ण यह है कि नवीन भौतिक विज्ञान हमें धर्म का आधार प्रदान कर रहा है। पश्चिम के सांस्कृतिक इतिहास में यह नवाचार है और इसका प्रभाव हमारे जीवन पर अवश्य होगा।'' वैज्ञानिक शॉपनहार ने भविष्यवाणी की थी कि ''पूरे विश्व में उपनिषदों के अध्ययन से श्रेष्ठ और कोई अध्ययन नहीं है।''

आज शिक्षा जगत में समाज की मूल्य हीनता पर बहुत चर्चा हो रही है और कई प्रकार के प्रकल्प चलाए जा रहे हैं। जिससे शिक्षा के क्षेत्र में मानव मूल्यों को स्थापित करके समाज में भ्रष्टाचार और दुराचार आदि बुराइयों को दूर किया जाए, परन्तु मूल में जाने से समझ में आता है कि मूल्यों के ह्रास का सम्बन्ध धर्मविहीन शिक्षा से ही है। इस प्रकार से एक ऐसी शिक्षा व्यवस्था जिसको धर्म निरपेक्षता के नाम से धर्मविहीनता का चोला पहना दिया गया हो और ऐसी शिक्षा व्यवस्था जिसमें प्रकृति के नैसर्गिक और शाश्वत मूल्यों का भी समावेश हो, दोनों में शिक्षक की भूमिका बिलकुल भिन्न होगी। एक प्रकार की शिक्षा व्यवस्था में अध्यापक विद्यार्थियों को धर्म से परहेज करना सिखायेगा और दूसरी प्रकार की शिक्षा में सभी धर्मों का आदर–सम्मान करना सिखायेगा। इस विषय में स्वामी विवेकानन्द के अमेरिका के प्रथम भाषण में, जो उन्होंने विश्व धर्म सभा में किया के वाक्य महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने कहा था कि ''वे उस समाज का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं जो अपने से भिन्न धर्मों को केवल मात्र सहते ही नहीं परन्तु उनके मन में सब धर्मों के लिए सम्मान है और वे जानते हैं कि सत्य सब धर्मों में है।'' स्वामी विवेकानन्द की धर्म की व्याख्या, धर्म की समाज में भूमिका एवं धर्म का व्यक्तित्व में समावेश करने वाली शिक्षा व्यवस्था यदि कोई स्थापित कर सकता है तो वह अध्यापक वर्ग ही है। परन्तु उसके लिए पूरे शिक्षक जगत को विवेकानन्दमय होना अनिवार्य है।

पूरी चर्चा से तीन विकल्प उपलब्ध होते हैं–

स्वामी विवेकानन्द के दर्शन पर आधारित विकल्प	वर्तमान शिक्षा में प्रचलित विकल्प
1. मनुष्य में ज्ञान उपलब्ध है, उसको केवल प्रस्फुटित करना है।	1. मनुष्य सम्पूर्ण रूप से अज्ञानी उत्पन्न होता है और उसको सब कुछ देकर ही सिखाना है।
2. मनुष्य प्रकृति की श्रेष्ठतम रचना है और उसमें विकास की असीम संभावनायें हैं।	2. मानव पापी उत्पन्न होता है और उसको पाप में लिप्त रहते हुए इन्द्रिय सुखों का भोग करना है।
3.शिक्षा में विज्ञान और धर्म को समरूप मानकर एक दूसरे के पूरक समझा जाय।	3. विज्ञान सत्य पर आधारित है और आध्यात्म भ्रम है।

यदि हम स्वामी विवेकानन्द की धारणाओं पर आधारित शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक की भूमिका ढूढने का प्रयास करें तो स्पष्ट होता है कि शिक्षक की भूमिका शिक्षा देने की कम है परन्तु सीखने के वातावरण को उत्पन्न करने की अधिक है। शिक्षण या अध्यापन का कार्य भिन्न रूप का है परन्तु आवश्यकता है ऐसे व्यक्तियों की जो विद्यार्थियों के लिए ज्ञान को उधड़वाने का कार्य करें। जो ज्ञान प्राप्ति का मार्गदर्शक बनें। विद्या प्राप्ति को सुसाध्य बनायें। अंग्रेजी के शब्द का प्रयोग करें तो शिक्षक की भूमिका facilitator की हो। सामान्यतः गुरू शब्द का प्रयोग होना चाहिए, परन्तु वर्तमान में इस शब्द के साथ कई तरह के अर्थ एवं भाव जुड़ गये हैं। इसी संदर्भ में स्वामीजी के इस वक्तव्य को समझना आवश्यक है ''वास्तव में आज तक किसी ने किसी को पढ़ाया नहीं है। एक शिक्षक जब वह सोचता है कि वो सिखा रहा है तो सबकुछ नष्ट कर देता है । मनुष्य के भीतर सब ज्ञान है, इसे केवल जागृत करना है और अध्यापक का यही दायित्व है।'' एक अन्य स्थान पर स्वामीजी ने कहा है ''जैसे तुम एक पेड़ को नहीं उगा सकते है वैसे ही तुम एक बच्चे को पढ़ा भी नहीं सकते। बीज अपनी भीतरी प्रकृति के कारण से विकसित होता है।''

विद्यार्थी की पूजा ही शिक्षा

प्रश्न यह उठता है कि स्वामी विवेकानन्द के विचारों पर आधारित शिक्षा व्यवस्था की रचना होती है तो शिक्षक को क्या करना है ?और विद्यार्थी को क्या करना है ?अर्थात विद्यार्थी और अध्यापक के सम्बन्ध और दायित्व क्या हों ?सर्वोत्तम उदाहरण इस संदर्भ में स्वामी विवेकानन्द और श्रीरामकृष्ण परमहंस के सम्बन्ध हैं। रामकृष्ण परमहंस गुरू थे एवं स्वामी विवेकानन्द शिष्य परन्तु गुरू ने स्वामी विवेकानन्द में क्रमशः उत्सुकताएं जागृत कीं, जिनके आधार पर स्वामीजी को ज्ञान का बोध होता गया। ऐसी उत्सुकताएं और जिज्ञासाएं उत्पन्न करने की कला ही अध्यापक का गुण है। वर्तमान में भी श्रेष्ठ और प्रभावी अध्यापक वही माना जाता है जो विद्यार्थियों को प्रश्न पूछने के लिए प्रेरित करे और प्रश्नों के सीधे उत्तर न देकर विद्यार्थियों को इस प्रकार का मार्गदर्शन दे कि विद्यार्थी स्वयं से अपनी जिज्ञासाओं के उत्तर प्राप्त कर सकें। इसे स्वामीजी ने बार–बार आत्म अनुभूति प्राप्त होने का साधन बताया है। स्वामी जितात्मानन्द ने लिखा है कि वेद के अनुसार ज्ञान के माध्यम से अध्यापक शिक्षार्थी की भक्ति करता है।(Teacher according to Vedanta a worshipper and the student is the God worshipped through knowledge)

संक्षेप में यदि कहा जाये तो शिक्षक की भूमिका शिक्षा की व्याख्या पर आधारित है और इस

विषय में स्वामी विवेकानन्द के इस वाक्य को सिद्धान्त मानकर चल सकते हैं– ''शिक्षा का अर्थ है उस पूर्णता का विकास करना जो मनुष्यों में पहले से ही विद्यमान है।'' विद्यार्थी की पूर्णता का विकास करने के लिए शिक्षक को ज्ञान का वितरण या विर्सजन नहीं करना है परन्तु उसको तो विद्यार्थी के माध्यम से ज्ञान के पट खुलवाने हैं और नित नये पट खुलवाने हैं। नये द्वार खोलने की प्रेरणा तभी आ पायेगी जब कुछ नया प्राप्त करने की जिज्ञासा हो। इसलिए यदि अध्यापक का कार्य विद्यार्थियों के लिये नये ज्ञान को प्राप्त करने की प्रेरणा देना है, तो उसके लिए सबसे अधिक प्रभावी साधन है जिज्ञासा उत्पन्न करना। ध्यान रखना होगा कि जो स्वयं जिज्ञासु है वह ही जिज्ञासा उत्पन्न करने की क्षमता रख सकता है। इसलिए शिक्षक सदैव विद्यार्थी रहे, ज्ञान का भिक्षु और पिपासु रहे और विद्यार्थियों के साथ मिलकर जिज्ञासाओं का समाधान न करे परन्तु करवाए। स्वामीजी की निम्न उक्ति को इस संदर्भ में उल्लेखित करना प्रासंगिक है–

''थोड़ा ईश्वर का स्मरण,

थोड़ा उसका भरोसा करना सीखो,

सत्य के लिये थोड़ा जोखिम उठाना सीखो,

थोड़ा साहस करना सीखो।

विवेकानन्द द्वारा प्रतिपादित वैदिक सिद्धान्तों के आधार पर रचित शिक्षा व्यवस्था में शिक्षक की भूमिका निम्न विधियों द्वारा परिभाषित की जा सकती है–

1. शिक्षक विद्यार्थियों में ज्ञान की जागृति का संचारक बने।
2. शिक्षक नवीन ज्ञान को अर्जित करवाने का संवाहक बने।
3. विद्यार्थी के विकास में शिक्षक facilitator बने।
4. शिक्षक ज्ञान का उपासक और शिक्षार्थी का भक्त बने।
5. शिक्षक जिज्ञासु होते हुए सदैव शोधार्थी रहे।
6. प्रकृति के शाश्वत नियमों के प्रतिपादन का शिक्षक कर्तापुरूष बने।
7. शोध के कार्यों में शिक्षक पर्यवेक्षक की भूमिका न निभाकर सहयोगी शोधार्थी की भूमिका में रहे।

✍ **लेखक माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के कुलपति एवं पंचनद शोध संस्थान के निदेशक हैं।**

****

स्वामी विवेकानंद की संचार दृष्टि

✍ गिरीश उपाध्याय

भारतवर्ष में यूं तो कई विचारक, दार्शनिक, संत, उपदेशक आदि हुए हैं जिन्होंने न सिर्फ तत्कालीन समाज बल्कि आने वाली कई पीढ़ियों को अपने विचारों से प्रभावित किया है। लेकिन ऐसे मनीषियों में स्वामी विवेकानंद का स्थान सर्वथा अलग और अप्रतिम है। उनके विचारों ने न सिर्फ तत्कालीन देशकाल व परिस्थितियों को प्रभावित किया बल्कि वे आज भी उतने ही ताजा और चेतनादायी लगते हैं। भारतवर्ष के ज्यादातर मनीषियों ने जहां केवल देश में ही अपने विचारों की छाप छोड़ी वहीं स्वामी विवेकानंद ने एक परिव्राजक के रूप में न सिर्फ भारतवर्ष के विभिन्न भागों में भ्रमण कर लोगों को अपने विचारों से प्रभावित किया बल्कि कई वर्षों तक दुनिया के अनेक देशों की यात्रा करके भारतीय दर्शन और वेदांत की अवधारणा से समूचे विश्व को परिचित कराया।

स्वामी विवेकानंद का योगदान इसलिए भी और महत्वपूर्ण हो जाता है क्योंकि उस समय भारत न सिर्फ अंग्रेजों का गुलाम था बल्कि समाज भी अनेक विसंगतियों एवं सामाजिक बुराइयों से जूझ रहा था। एक तरफ सनातन धर्म को भारतीय समाज की विसंगतियां ही कमजोर कर रही थीं दूसरी तरफ उस पर ईसाईयत के बढ़ते प्रभाव का खतरा भी मंडरा रहा था। तत्कालीन समाज में भारतवासियों और भावी पीढ़ी को देश और यहां की अद्वितीय संस्कृति और सनातन धर्म की उन शाश्वत अवधारणाओं से परिचित कराने की आवश्यकता थी जिसके केंद्र में समस्त जीवजगत के कल्याण की भावना है। स्वामी विवेकानंद ने इस चुनौती को स्वीकार करते हुए समाज के सामने हिंदू धर्म और उसकी बुनियादी बातों को इस तरह से रखा कि न केवल देश में बल्कि दुनिया भर में उसकी मान्यता स्थापित हुई और लाखों लोग उनके अनुयायी बने। वास्तव में एक विचारक का संचारक स्वरूप उसके व्यक्तित्व को और भी व्यापक बना देता है। क्योंकि विचार केवल विचारक के मन मस्तिष्क में संचित करने या उसे वहीं तक सीमित रखने के लिए नहीं होता। उसमें निहित मानव मात्र के कल्याण की भावना यह मांग करती है कि उसे समूचे विश्व के समक्ष उद्घाटित किया जाए। चूंकि स्वामी विवेकानंद का दर्शन दूध से दही, दही से मक्खन और मक्खन से घी निकालने जैसी उत्तरोत्तर प्रक्रिया की तरह है इसलिए वह सहज लगता है और स्वाभाविक भी। विचार की सहजता और स्वाभाविकता ही उसे प्रेषणीय भी बनाती है और उसे संचरित भी करती है।

स्वामी विवेकानंद के विचार इसीलिए सार्वकालिक हैं। विचारों की सहज संप्रेषणीयता ही उन्हें विश्व के महानतम और अग्रणी संचारकों में प्रतिष्ठित करती है। स्वामी विवेकानंद मानते हैं कि ज्ञान या विचार तो मनुष्य के भीतर पहले से ही विद्यमान है। आवश्यकता इस बात की है कि हम उसे उद्घाटित होने का अवसर कब और कैसे देते हैं। ज्ञान तो बीज रूप में हमारे भीतर हमेशा से रहा है। जैसे बीज को अंकुरित होने के लिए मिट्टी, पानी, हवा, प्रकाश और खाद आदि की आवश्यकता होती है उसी तरह ज्ञान को प्रस्फुटित होने के लिए अच्छे गुरु की आवश्यकता होती है। गुरु के ज्ञान की ऊष्मा का शिष्य तक संचार होना और उस ऊष्मा से शिष्य के मन में छिपे ज्ञानबीज का अंकुरण ही आत्मा के परमात्मा से मिलने के उपक्रम का आरंभ है।

जैसे जैसे गुरु के ज्ञान का शिष्य के मन में संचार होता है वैसे वैसे शिष्य की आत्मा का परिष्कार होता चला जाता है। संचार के भी अनेक रूप हैं। वह मूर्त भी है और अमूर्त भी। और चूंकि अमूर्त स्वरूप को व्याख्यायित नहीं किया जा सकता इसलिए कई मामलों में संचार को किसी परिभाषा में बांधना भी मुश्किल होता है। भारतीय दर्शन में संसर्ग या स्पर्श जन्य अनुभव या संचार के साथ ही आंतरिक अनुभूति पर काफी जोर दिया गया है यह आंतरिक अनुभूति ही वास्तविक संचार है। गूंगे के गुड़ की तरह इसे सिर्फ अनुभूत किया जा सकता है। उसकी उस रूप में व्याख्या नहीं हो सकती जिस रूप में उसके आस्वाद को ग्रहण किया जाता है। यद्यपि मिठास वही रहेगी पर गुड़ के स्वाद का हर व्यक्ति का अनुभव अलग अलग होगा। ठीक उसी तरह जैसे हर स्पर्श का अलग अलग व्यक्ति पर अलग अलग तरीके से असर होता है। नारी का पुत्र को किया गया स्पर्श ममता या स्नेह की अनुभूति कराएगा लेकिन किसी अन्य पुरुष को वही स्पर्श यौवनोचित भावनाएं अनुभूत कराएगा।

कोई भी संचार तभी प्रभावी होता है जब उसमें स्पष्टता, विश्वसनीयता और तार्किकता जैसे तत्व आवश्यक रूप से हों। अच्छे संदेश को लोगों तक पहुंचाने के लिए संचारक के विचारों में स्पष्टता होना अत्यंत आवश्यक है। अगर विचार ही स्पष्ट नहीं होगा तो उसके माध्यम से बनने वाला या दिया जाने वाला संदेश भी स्पष्ट और प्रभावी नहीं होगा।

इसी तरह संचारक की विश्वसनीयता और तार्किकता भी बहुत ही आवश्यक है। उसमें किसी भी प्रकार का आग्रह, दुराग्रह या पूर्वाग्रह भी नहीं होना चाहिए। इस दृष्टि से हम स्वामी विवेकानंद के दर्शन और विचारों को जितना संप्रेषणीय पाते हैं उतना अन्यों को नहीं।

स्वामीजी ने यूं तो वेदांत की व्याख्या करते हुए अनेक गूढ़ विषयों पर अपने विचार रखे हैं। इनमें उन आध्यात्मिक विषयों पर चिंतन के साथ ही उनकी तार्किक, वैज्ञानिक और देशकाल परिस्थिति के अनुकूल व्याख्या भी है। परंतु उन्होंने अपने विचारों का साधारणीकरण करते हुए कई ऐसे विषयों पर भी बात की है जो समाज के दैनंदिन कार्यकलापों का हिस्सा हैं। स्वामीजी अपने विचारों को गूढ़ता की पराकाष्ठा तक नहीं ले जाते, वे विषय की ऐसी सरल व्याख्या करते हैं कि गूढ़ से गूढ़ विषय भी सहज ग्राह्य बन जाता है। आत्मा और परमात्मा से जुड़े प्रश्नों के साथ ही वे समाज के ऐसे विषयों पर भी बात करते हैं जो आम आदमी से वास्ता रखते हैं। वे धर्म की सरल व्याख्या करते हुए उसे जटिलता के दायरे से बाहर लाने का प्रयास करते हैं। उसे लोगों के लिए बोधगम्य बनाते हैं। भारत के पूर्व राष्ट्रपति और दार्शनिक सर्वपल्ली राधाकृष्णन कहते हैं कि '' विवेकानंद ने यह सिद्ध किया कि हिंदू धर्म विज्ञान सम्मत भी है और लोकतंत्र का समर्थक भी। वह प्रचलित हिंदू धर्म नहीं जो दोषों से भरपूर है बल्कि वह हिंदू धर्म जो हमारे महान विचारकों को अभिप्रेत था।''

स्वामी विवेकानंद ने वेदों के बारे में लिखा है कि '' वेद कोई पुस्तकें नहीं हैं, वे उन आध्यात्मिक नियमों के संचित कोष हैं, जो अलग अलग पुरुषों ने अलग अलग समय पर मालूम किए हैं।''

डॉ. राधाकृष्णन कहते हैं '' विवेकानंद की दृष्टि में धर्म योग है। यह वैयक्तिक परिवर्तन, समायोजन और समन्वय का नाम है। किसी सिद्धांत को मानना धर्म नहीं है। धर्म अपनी प्रकृति का पुनर्निर्माण है। धर्म बौद्धिक कट्टरता नहीं है। आध्यात्मिक जीवन का मनुष्य के अंदर

उदय होना धर्म है। विवेकानंद ने ज्ञानयोग, राजयोग, भक्तियोग और कर्मयोग पर ग्रंथ लिखे और कहा कि आध्यात्मिक सिद्धि की प्राप्ति इन विभिन्न साधनों में से किसी भी एक की सहायता से की जा सकती है। अगर हम किसी धर्म विशेष को सार्वभौम सत्यों से अधिक महत्व देते हैं तो हमारी प्रवृत्ति असहिष्णुता की हो जाती है। असहिष्णुता धार्मिक अहंकार का प्रकाशन है विनय का नहीं।'' आज हम अपनी धर्मनिरपेक्षता की चर्चा करते हैं। हम धर्मनिरपेक्ष इस अर्थ में नहीं हैं कि हम धर्म के प्रति उदासीन हैं। हम धर्मनिरपेक्ष इसलिए हैं कि हम सब धर्मों को पवित्र मानते हैं। हम अंतःकरण की पवित्रता में विश्वास करते हैं। प्रत्येक व्यक्ति को अपना रास्ता आप चुनने का और ईश्वर को अपने ही तरीके से पाने का अधिकार है। धर्मनिरपेक्षतावाद हमें न केवल सहिष्णु बनना सिखाता है बल्कि अन्य धर्मों का समझना और प्रेम करना भी सिखाता है।

स्वामी विवेकानंद ने कहा था '' हम हिंदू लोग केवल सहिष्णु ही नहीं हैं। हम प्रत्येक धर्म से स्वयं को एकाकार कर देते हैं। हम मुसलमानों की मस्जिद में प्रार्थना करते हैं, हम पारसियों की अग्नि को पूजते हैं, हम ईसाइयों के क्रॉस के सम्मुख झुक जाते हैं।''

स्वामीजी के ये कथन हमारे धर्म की व्यापकता को दर्शाते हैं। यदि हम अन्य धर्मों के प्रति विभिन्न रूपों में अपनी सहिष्णुता का परिचय देते हैं तो यह मूलतः हमारे स्वभाव की विनम्रता और हमारी प्रकृति में ही उस परमपिता की सृष्टि के प्रति आस्था का भाव है। हमारी यह आस्था मूलतः उस आदि शक्ति के प्रति है जिसने इस जीव जगत का निर्माण किया है। और यही कारण है कि तमाम विरोधाभासों के बावजूद हम आस्थावान भी हैं और सहिष्णु भी। धर्मों को लेकर आज जो विवाद हैं ऐसा नहीं है कि वे विवेकानंद के समय नहीं थे। लेकिन उनकी संचारक दृष्टि ने यह ताड़ लिया था कि यदि इन विवादों को कट्टर बनकर देखा गया या उन्हें लेकर रुढ़िवादी रवैया अपनाया गया तो इससे सिवाय वैमनस्य के और कुछ हासिल नहीं होगा।

स्वामी विवेकानंद भाग्य के बजाय कर्म की उपासना पर जोर देते हैं। वे बाह्य आडंबरों या अनावश्यक कर्मकाण्डों के स्थान पर मनुष्य को तरजीह देते हैं। उनका संदेश है कि ईश्वर मनुष्य के भीतर है अतः हम यदि मोक्ष प्राप्त करना चाहते हैं तो मनुष्य की सेवा करें। विचारों की स्पष्टता और उदात्ता देखिए कि स्वामी जी प्रचलित संप्रदायगत धर्मों और सैद्धांतिक वाद विवादों से ऊपर उठकर मानव समाज के समग्र कल्याण और मानव मात्र की चिंता का बीज मंत्र देते हैं, उनके अनुसार वास्तविक धर्म मानव की सेवा ही है। धर्म के नाम पर पाखंड को स्वामीजी सिरे से अस्वीकार करते हैं। उन्होंने एक बार दक्षिणेश्वर मंदिर के प्रवचन में कहा था- ''विदेशी हमलावरों ने एक के बाद एक अनेक मंदिर तोड़े किंतु जैसे ही वह आंधी गुजरी, मंदिर का शिखर पुनः खड़ा हो गया। गुजरात का सोमनाथ मंदिर तोड़ा गया, किंतु आज भी वह असंख्य श्रद्धालुओं का प्रेरणा केंद्र है। दक्षिण भारत में अनेक मंदिरों को विदेशी आक्रांताओं द्वारा तोड़ा गया। ध्यान से देखो, इन मंदिरों पर सैकड़ों आक्रमणों एवं सैकड़ों पुनरुत्थानों के चिह्न किस तरह अंकित है। वे बार बार नष्ट हुए और खंडहरों में से पुनः उठ खड़े हुए, पहले की ही भांति सशक्त एवं नवजीवनयुक्त। विदेशी आक्रमणकारी अभी भी हमारा वैभव व हमारी श्रद्धा भावना नष्ट नहीं कर पाए।''

यहां स्वामी की जो बात रेखांकित करने वाली है

वह अंतिम वाक्य में है। हो सकता है कि स्वामीजी के कथन के विपरीत सैकड़ों मंदिरों का पुनरुत्थान न हुआ हो और वे खंडहर बनकर ही रह गए हों लेकिन क्या आज ऐसे हजारों लाखों खंडहर नहीं हैं जो किसी न किसी कारण से और किसी न किसी रूप में अपने खंडित स्वरूप में ही सही लाखों लोगों की आस्था और श्रद्धा का केद्र बने हुए हैं। तो बात यही है कि हम किसी भी रचना के बाहरी चोले को ज्यादा महत्व नहीं देते। हमारे लिए महत्व है तो उसकी आंतरिक रचना का। महान लेखक प्रेमचंद लिखते हैं- ''विवेकानंद ने पाश्चात्यों को पहली बार सुनाया कि विज्ञान के वे सिद्धांत जिन पर उनको गर्व है और जिनका धर्म से संबंध नहीं, हिंदुओं को अति प्राचीन काल से विदित थे और हिंदू धर्म की नींव उन्हीं पर खड़ी है। जहां अन्य धर्मों का आधार कोई विशेष व्यक्ति या उसके उपदेश हैं, हिंदू धर्म का आधार शाश्वत सनातन सिद्धांत हैं, और यह इस बात का प्रमाण है कि वह कभी न कभी विश्व धर्म बनेगा। कर्म को केवल कर्तव्य समझकर करना, उसमें फल या सुख दुख की भावना न रखना ऐसी बात थी, जिससे पश्चिमवाले अब तक सर्वथा अपरिचित थे। स्वामीजी की ओजस्वी वाणी में वह प्रभाव था कि सुनने वाले आत्मविस्मृत हो जाते थे।''

वास्तव में स्वामीजी की वाणी में ओजस्विता के साथ ही सहजता का पुट ही उसे व्यापक आधार देता है। उनके अनुसार धर्म और समाज का रिश्ता शरीर और आत्मा जैसा है। स्वामीजी व्यक्ति के साथ ही समष्टि के परिष्कार की बात करते हैं। समाज सुधार और सामाजिक बुराइयों अथवा विसंगतियों के उन्मूलन पर हमेशा उनकी दृष्टि रही। वे खासतौर से समाज के उस वर्ग को उन्नत और शिक्षित देखना चाहते थे जो सदियों से वंचित है और जिसे समाज के श्रेष्ठि वर्ग ने मनुष्य होने के दायरे से भी बाहर कर दिया है। मुंशी प्रेमचंद लिखते हैं कि ''स्वामीजी के उपदेशों का सार यह है कि हम स्वजाति और स्वदेश के प्रति अपने कर्तव्यों का पालन करें, आत्मबल प्राप्त करें, बलवान और वीर बनें। नीची जातियों को उभारें और उन्हें अपना भाई समझें।.... स्वामीजी की शिक्षा का आधार प्रेम और शक्ति है। निर्भीकता उसका प्राण है और आत्मविश्वास उसका धर्म है। उनकी शिक्षा में अनुनय विनय के लिए तनिक भी स्थान नहीं था। उनका वेदांत मनुष्य को सांसारिक दुख क्लेश से बचाने, जीवन संग्राम में वीर की भांति जुटने और मानसिक एवं आध्यात्मिक आकांक्षाओं की पूर्ति की समान रूप से शिक्षा देता है।''

आज जब धर्म के नाम पर आत्मप्रचार हो रहा है और संत एवं सन्यासियों का कथित चोला डालकर कई लोग समाज में विकृति के वाहक बने हुए हैं, ऐसे में श्री आलासिंगा पेरुमल तथा मद्रास के दूसरे शिष्यों को संबोधित करते हुए 1894 में स्वामीजी का यह कथन कितना प्रासंगिक है- ''मैं चाहता हूं कि हममें किसी प्रकार की कपटता, कोई मक्कारी, कोई दुष्टता न रहे। मैं सदैव प्रभु पर निर्भर रहा हूं, सत्य पर निर्भर रहा हूं, जो कि दिन के प्रकाश की भांति उज्ज्वल है। मरते समय मेरी विवेक बुद्धि पर यह धब्बा न रहे कि मैंने नाम या यश पाने के लिए, यहां तक कि परोपकार करने के लिए दुरंगी चालों से काम लिया था, दुराचार की गंध या बदनीयती का नाम तक न रहने पाए।''

✍ **लेखक वरिष्ठ पत्रकार एवं माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय की विवेकानन्द पीठ में शोध अध्येता हैं।**

****

स्वामी विवेकानन्द विज्ञान, चेतना और दर्शन

✍ कृष्ण चन्द्र अरोड़ा

'वैज्ञानिक मानसिकता'' शब्द हमें प्रायः सुनने को मिलता है और ऐसा कहा जाता है कि यह शब्द हमें पण्डित जवाहर लाल नेहरू ने दिया है। परन्तु इस शब्द के पीछे जो विचार है वह वस्तुतः काफी पहले का है। इसका श्रेय यदि किसी को देना हो तो वह स्वामी विवेकानन्द को देना होगा क्योंकि उन्होंने ही सर्वप्रथम सबको बताया कि विज्ञान को परे रखकर मनुष्य कोई विचार ही नहीं कर सकता और विज्ञान दर्शनशास्त्र का ही एक अभिन्न अंग है।

स्वामी जी ने जैसे वैज्ञानिक मानसिकता पर बल दिया है वैसे ही आध्यात्मिक विकास पर भी जोर दिया है। स्वामी जी को दो समस्याओं का सामना करना पड़ा था, जिनमें पहली थी समकालीन देशवासियों के चिन्तन में पड़ना। अपने देशवासियों की भर्त्सना करते हुए स्वामी जी कहते हैं – ''तुम लोगों ने अपने पेट को ही ईश्वर के आसन पर बिठा दिया है और रसोई घर ही तुम्हारी पूजा का मन्दिर हो गया है।'' दूसरी समस्या थी – ईसाई मिशनरियों द्वारा हिन्दू धर्म पर आक्रमण। उन लोगों को हिन्दू धर्म में कोई भी अच्छाई नहीं दिखाई देती थी और हर सम्भव प्रकार से उन्हें हिन्दू धर्म के विरूद्ध प्रचार में ही आनन्द मिलता था। इसीलिए स्वामी जी ने खेद व्यक्त करते हुए कहा था – ''हम लोग गरीब हैं, हमें रोटी की जरूरत है और उसकी जगह तुम हमें ईंट–पत्थर देते हो।''

स्वामी जी ने 1902 में देहत्याग किया, पर विज्ञान तब भी वस्तु वाद से अधिक कुछ भी नहीं जानता था। सापेक्षतावाद (Theory of Relativity) और क्वांटम मैकेनिक्स (Quantam Mechanics)का तब तक आविष्कार नहीं हुआ था, जिनके द्वारा वर्तमान काल की विचारधारा में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है। परन्तु स्वामी जी तभी समझ गये थे कि इस भौतिकवाद के आधार पर किसी सर्वांग–सम्पूर्ण जीवनदर्शन की रचना नहीं हो सकती।

इतने दिनों बाद अब हम समझ पा रहे हैं कि विश्व चेतना भी भौतिक विज्ञान का एक अभिन्न अंग है। हां, यह बात और है कि पाठ्यपुस्तकों में चेतना की नहीं, वरन् दृष्टा की बात कही गई है। परन्तु कोई जब देखना–बोलना आदि करता है, तो वह यह सब चेतना की सहायता से ही करता है। क्वांटम मैकेनिक्स में चेतना शब्द का बड़ा प्रयोग होता है पर कोई भी इस शब्द का अर्थ विज्ञान सम्मत पद्धति से समझा नहीं पाता। बड़े मजे की बात तो यह है कि जहां सब कुछ गणित की भाषा में कहने की अपेक्षा की जाती है, वहां मानों असहाय होकर 'चेतना' नामक एक शब्द का प्रयोग करना पड़ता है, जो कि भौतिक विज्ञान की परिधि के अन्तर्गत नहीं आता। दर्शनशास्त्र की बात भिन्न है। दर्शन में तो चेतना की सत्ता मान ली गई है, क्योंकि यह हर व्यक्ति की अनुभूति की चीज़ है। यह आश्चर्य की बात है कि हम चेतना का अस्तित्व तो स्वीकार करते हैं पर उसकी कोई वैज्ञानिक परिभाषा नहीं कर पाते।

भौतिक विज्ञान यह आवश्यक नहीं मानता की जो घटनाएं हो रही हैं, उनकी पूर्वावस्था की बात भी बसायी जाए। उदाहरणार्थ एक परमाणु की आकृति को समझने के लिए पूरा कण भौतिक (Particle Physics) जानने की जरूरत नहीं। उसी प्रकार विश्व व्यापार को समझने के लिए परमाणु की आकृति समझने की आवश्यकता नहीं। सम्भवतः इसी कारण दर्शनशास्त्र चेतना का

अस्तित्व स्वीकार करके ही संतुष्ट है। कहां से किस प्रकार, किन रासायनिक प्रक्रियाओं के फलस्वरूप उसका प्रादुर्भाव हुआ, इन प्रश्नों को लेकर वह सिर नहीं खपाता। चेतना की प्रकृति तथा गति के कुछ सुनिश्चित नियम है। बरसों पहले वेदान्त के ऋषि, विशेषकर शंकराचार्य, हमारे मन की विभिन्न अवस्थाओं का वर्णन कर गये हैं। इन विभिन्न अवस्थाओं में भिन्न–भिन्न प्रकार की अनुभूतियां होती है और यह भी मानना पड़ता है कि अपने–अपने दायरे में वे सारी अनुभूतियां सत्य हैं। जागृत अवस्था में हम सभी लोग जगत का अनुभव करते हैं। अपनी विभिन्न इन्द्रियों की सहायता से हमें इस जड़ जगत का बोध होता है। कोई भी इसके अस्तित्व को नकार नहीं सकता। परन्तु निद्रावस्था में भी हमारा मन निष्क्रिय नहीं रहता और उस समय जो हमें अनुभूतियां होती है, उनका बाह्य जगत के साथ कोई सम्पर्क भी नहीं हो सकता है। फिर जागृत और निद्रावस्था के अतिरिक्त हमारी एक और भी अवस्था है। हां, यह जरूर है कि इस अवस्था में जो कुछ होता है, उसका हमें स्पष्ट ज्ञान नहीं है। विज्ञान की भाषा में यदि इन सभी अवस्थाओं और क्रियाओं का वर्णन करने का प्रयत्न किया जाए तो यह दोषारोपण हो सकता है कि हमने विज्ञान और दर्शनशास्त्र का घालमेल कर दिया है परन्तु वास्तव में यदि देखा जाएं तो विज्ञान दर्शनशास्त्र का ही एक अंग है। प्रसिद्ध परमाणु वैज्ञानिक डॉ. राजा रामन्ना का भी यही मानना है। दर्शन के अभाव में विज्ञान अर्थहीन है। स्वामी विवेकानन्द जी ने भी यही बात एक और तरीके से कही है, ''बहुत से वैज्ञानिक दर्शनशास्त्र को 'सिर खपाना' कह कर उड़ा देना चाहते हैं, परन्तु अनेक विशिष्ट वैज्ञानिक चेतना की व्याख्या ढूंढ़ते हुए विफल हो रहे हैं, जबकि यह मेरे आपके और हम सबके अनुभव की वस्तु है।''

विज्ञान का एक नियम यह भी है कि जो चीज़ सब के अनुभव में आती है, उसकी सत्यता को स्वीकार करना होगा, हां यदि एक व्यक्ति को ही वह अनुभव हो, तो उसे कल्पना कह कर उड़ाया जा सकता है। युक्ति कहती है कि चेतना को जाने बिना भी बाह्य जगत को समझने में हमें कोई असुविधा नहीं होती, अतः चेतना को लेकर व्यर्थ की माथा पच्ची क्यों की जाए ? परन्तु मन इसे स्वीकार नहीं करता। किसी–किसी की तो धारणा है कि चेतना मस्तिष्क के भीतर कोई जटिल रासायनिक प्रक्रिया मात्र है और मस्तिष्क भी एक कम्प्यूटर से अधिक कुछ नहीं है। कम्प्यूटर की ''ब्लैक बॉक्स'' भी कहते हैं। इस ब्लैक बॉक्स का कार्य है – जो घटनाएं हो रही हैं या हो सकती हैं और उनमें से जो जो युक्ति सिद्ध है उनका वर्गीकरण कर देना। परन्तु इनमें से कौन सी युक्ति सिद्ध है और कौन सी नहीं – इस बात का निर्धारण स्वतंत्र मनुष्य के द्वारा होता है न कि किसी यंत्र विशेष के द्वारा।

हमें स्मरण रखना होगा कि मस्तिष्क और चेतना, दो अलग–अलग चीजें हैं। मस्तिष्क एक प्रकार का कम्प्यूटर हो सकता है पर चेतना नहीं। यह असम्भव है कि किसी दिन कम्प्यूटर चेतना की भी भूमिका ले सकेंगे। चेतना के द्वारा व्यक्तित्व में जो परिवर्तन आता है, उसकी व्याख्या गणित, रसायन और भौतिकशास्त्र के द्वारा नहीं हो सकती। अधिक से अधिक हम इतना ही कह सकते हैं कि मस्तिष्क के व्यापार तथा चेतना की उत्पत्ति के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। जीव–वैज्ञानिक यदि कहें कि वे जीवन का सारा रहस्य जान चुके हैं, तो इसे अतिशंयोक्ति मात्र कहना होगा। ज्यादा से ज्यादा इतना ही कहा जा सकता है कि वे इस सारे वैचित्र का श्रेणी विभाजन करते हैं, पर इतने से सृष्टि–तत्व की व्याख्या नहीं हो जाती।

यह कहा जा सकता है कि सृष्टि के मूल तत्व की खोज ही भौतिक विज्ञान का प्रधान कार्य है। सम्भवतः विश्व के सभी प्रमुख देशों के वैज्ञानिकों द्वारा जिनेवा में की गई God Particle (रचयिता कण) Bosone की खोज इसी दिशा में ही

किया गया एक प्रयास है। मूलतत्व की विधि अभिव्यक्तियों की व्याख्या को ही भौतिक विज्ञान के नियमों के रूप में जाना जाता है। डॉ. राजा रामन्ना शंकराचार्य के परमब्रह्म को इसी दृष्टिकोण से परम साम्य कहते हैं जिससे सम्पूर्ण विश्व ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति हुई है। इसी साम्य के विक्षेप होने पर हम उसे सृष्टि की संज्ञा देते हैं।

स्वामी जी का कहना था कि जड़–जगत को समझने के लिए हमें विज्ञान का सहारा लेना ही होगा। वैसे ही, चेतना को समझने के लिए हमें और भी अनुसंधान तथा ध्यान की आवश्यकता होगी। इन समस्याओं को हम केवल यह कहकर नहीं टाल सकते कि एक न एक दिन विज्ञान जरूर इनका समाधान कर सकेगा। कहना न होगा कि विज्ञान के दृष्टिकोण में भी पर्याप्त परिवर्तन लाने की आवश्यकता है।

✍ **लेखक शिक्षाविद् एवं सेवानिवृत्त प्राचार्य हैं।**

****

व्यक्तित्व निर्माण-स्वामी विवेकानन्द के सूत्र- वर्तमान की प्रासंगिकता

✍ डॉ. रामदेव भारद्वाज

स्वामी विवेकानन्द ने व्यक्ति निर्माण के लिए नैतिकता, अनाशक्ति, आज्ञाकारिता सम्बन्धी विषयों पर अधिक जोर दिया है। नैतिकता के बिना व्यक्तित्व और व्यक्ति का निर्माण सम्भव नहीं है। किसी कार्य की सफलता नैतिकता पर निर्भर करती है। इसलिए नैतिक बनें। नैतिक बनने के लिए कोई धार्मिक सिद्धांतों में पारंगत होने की आवश्यकता नहीं है अपितु किसी को भी और सभी को प्यार करना ही नैतिकता है। व्यक्तित्व निर्माण में अनाशक्ति के महत्व को विश्लेषित करते हुए स्वामी जी ने कहा है कि धन–सम्पदा को एक संरक्षक की तरह स्वीकार करो उसके साथ कोई आसक्ति नहीं होनी चाहिए । इस प्रकार व्यक्तित्व निर्माण के तत्व के रूप में आज्ञाकारिता के महत्व और भूमिका को प्रतिपादित करते हुए स्वामी जी ने कहा कि आज्ञाकारिता के सद्गुणों का पोषण किया जाना चाहिए परन्तु विश्वास की कीमत पर नहीं । शक्तियों/क्षमताओं का केन्द्रीयकरण आज्ञाकारिता द्वारा ही सम्भव है। आज्ञाकारिता ऐसा गुण है. जिसके बिना व्यक्तिगत क्षमताओं का केन्द्रीयकरण सम्भव नहीं है और केन्द्रीयकृत शक्ति के बिना सफलता नहीं । इन कार्यो के लिए धैर्य और शुचिता अनिवार्य है। व्यक्तित्व में धैर्य और शुचिता तथा दृढ़ाग्रह तीन ऐसे तत्व हैं जो सफलता के लिए जरूरी हैं।

इसी प्रकार आत्म संयम निष्कपटता तथा सत्यनिष्ठा ऐसे तत्व हैं जो व्यक्तित्व को गुणात्मक रूपान्तरण की दिशा में प्रवृत्त करते हैं। और यह सब सत्यनिष्ठा के बिना सम्भव नहीं है। इसके साथ ही स्वामी जी ने यह भी स्पष्ट किया कि अहंकार आलोचना ईर्ष्या, गम्भीरता की कमी, आलसीपन, पक्षपात और प्रसिद्धी की चाह ऐसे तत्व है जो व्यक्ति के निर्माण में बाधक तत्व की भूमिका निभाते है। इसलिए स्वामीजी का आह्वाहन था कि अहंकार और ईर्ष्या का परित्याग करो और दूसरों के लिए कार्य करो ।

एक दूसरे की आलोचना करना परस्पर शत्रुता उत्पन्न करने का मूल कारण है। आलस्य और पक्षपात पूर्ण आचरण के साथ–साथ प्रसिद्ध और सिर्फ प्रसिद्ध की कामना बुराईयों का कारक तथा दुःख का जनक है। इसलिए व्यक्ति निर्माण के लिए इन सभी तत्वों की साधना अनिवार्य है।

व्यक्ति–समाज अन्तर्सम्बंध

व्यक्ति–और–समाज के अन्तर्सम्बन्धों की व्यापकता समाज में व्यक्ति के दायित्वों और कर्तव्यों का व्यवहारिक स्वरूप प्रस्तुत करती है। स्वामी जी समाज के अनके आधारों में सत्य को सर्वाधिक महत्व देते थे। उनकी मान्यतानुसार सत्य को समाज की उपासना नहीं करनी है। अपितु–समाज को सत्य का आदर करना है। सत्य आधारित समाज का ढांचा खड़ा करना है। कोई भी समाज उत्कृष्ट तब होता है जहां समाज के घटक पुरूष, स्त्री, बच्चें इत्यादि तर्क की युक्तिपूर्वक अभिव्यक्ति, आत्मतत्वज्ञान, ईश्वर ज्ञान, धर्म ज्ञान, धार्मिक संस्कार, शिष्टाचार, हमारे समाज के आदर्शों का सम्मान होता है। आज हमें उन सभी को पुनः स्थापित करना है और प्रत्येक व्यक्ति को वास्तविकता के धरातल पर समाज के उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कृत संकल्पित

होना है। क्योंकि आध्यात्मिक दृष्टि से सम्पन्न व्यक्ति, समाज और राष्ट्र ही उन्नत राष्ट्र होता है। केवल भौतिक जीवन पर उन्नताधारित राष्ट्र उन्नत नहीं हो सकता । समाज में व्यक्तियों को और अधिक नैतिक होने की आवश्यकता है। आज हम एक–दूसरे की सम्पन्नता को देखकर उससे प्रतिस्पर्धा कर रहे हैं और एक पुलिस का व्यक्ति हमें नैतिकता का पाठ सिखा रहा है। जब कि सामाजिक अवधारणाओं, वास्तविकताओं से हमें नैतिकता की शिक्षा लेनी चाहिए । धर्म और समाज के सम्बन्ध में मौखिक प्रश्न यह है कि यदि समाज में धर्म अलग कर दिया जाए तो सिर्फ असभ्य व्यक्तियों का जंगल रह जाएगा । खुशी की अनुभूति मानवता का लक्ष्य नहीं है, अपितु प्रज्ञा ही सभी मनुष्यों का अंतिम लक्ष्य है। स्वामी जी ने कहा कि

"Society is made a test of Truth. Now this is very illogical. Society is only a stage of growth which we are passing... if the social state were permanent, it would be the same as it the baby remained baby. There can be no perfect man-baby . The word are a contradiction in terms, so there can be no perfect society".

एक आदर्श समाज में नीतिशास्त्र की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। नीति शास्त्र सदैव इंगित करता है कि ''मैं नहीं अपितु तू'' मेरा नहीं अपितु तेरा । इसका आदर्श वाक्य है अहम् नहीं । हमारी इंद्रिय चेतना कहती है कि मैं सबसे पहले परन्तु नीतिशास्त्र कहता है कि स्वंय को सबसे पीछे रखना चाहिए।

एक अच्छे समाज की संरचना का आधार अच्छाई और बुराई के भेद को अधिक स्पष्ट होना अथवा कम स्पष्ट होने का ज्ञान है। स्वामी जी ने स्पष्ट विवेचना करते हुए कहा कि अपने जीवन (बाल्यकाल) में हमें बहुत सी चीजें अच्छी लगती हैं परन्तु वास्तव में बुरी होती हैं और बहुत सी चीजें जो बुरी लगती है यथार्थ में अच्छी होती हैं। यह विचार भाव कैसे बदलता है। जिसे हम एक समय में बहुत अच्छा मानकर चलते हैं, कालान्तर में हम उसे अच्छा नहीं मानते। विचारों में यह परिवर्तन सदैव मानसिक/वैयक्तिक होता है। ऐसा नहीं है कि नीतिशास्त्र के बन जाने से समाज में आदर्श स्थिति व्याप्त हो जाएगी । नीतिशास्त्र का सबसे बड़ा दोष यह है कि अच्छे उपदेश एवं जीवन के दर्शन के बाद भी वह असफल है और समाज में बुराइयाँ विद्यमान रहती हैं। बुराइयों से मुक्ति पाने की सभी व्यवस्थाए एवं नीतियां उपदेश देती हैं, सलाह देती हैं– कि चोरी नहीं करो! उपदेश ठीक है परन्तु फिर भी व्यक्ति चोरी क्यों करता है ? क्योंकि चोरी करना, डकैती डालना और अन्य बुरे कार्यों को करना, व्यक्तियों ने अपना आचरण बना लिया है। यह गम्भीर मनोवैज्ञानिक समस्या है। हम मनुष्य को सर्वाधिक धर्मात्मा सम्पन्न मानते हैं, लेकिन अच्छा होना इतना आसान नहीं है।

व्यक्तित्व विकास का मनोविज्ञान

व्यक्ति के विकास का सीधा सम्बन्ध व्यक्ति के मन, इसके स्वरूप तथा चेतना के स्तर से है। मन की विभिन्न वृत्तियाँ, सकारात्मक और नकारात्मक बोधभाव, मनोवैज्ञानिक धरातल तथा चित् के अभिव्यक्त स्वरूप ही व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं। विवेकानन्द के अनुसार मन एक झील की तरह है और प्रत्येक विचार झील पर लहर की तरह है। झील में लहरें उठती है, फिर नीचे गिरती हैं और समाप्त हो जाती हैं। इसी प्रकार विचारों की लहरें बनती और उठती रहती हैं। विचार व्यक्ति को बनाते हैं। उच्चतम व्यक्ति का स्वभाव शान्त निःशब्द तथा ज्ञानातीत होता है। और वे विचारों की शक्ति को समझते हैं।

मन के विचारों के स्वरूप और स्तर का सीधा सम्बन्ध चेतना के स्तर से होता है। इसी क्रम में अचेतन मन, अहंकार, धर्म और मन की गति का निर्धारण होता है। मानसिक एकाग्रता और ध्यान, चिन्तन व्यक्तित्व के कई सोपान खोलती हैं, ध्यान, मस्तिष्क को कुछ उद्देश्य के लिए प्रकाशित

करता है। इच्छा शक्ति मन मस्तिष्क को एकाग्रता और व्यक्ति के जीवन में विचारशक्ति, प्रेम, निष्ठा, तथा श्वास को नियंत्रित करती है। इस प्रकार व्यक्तित्व के निर्माण में भौतिक तथा आर्थिक तत्वों की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक तत्व जैसे एकाग्रता, मानसिक एकाग्रता, मानसिक नियंत्रण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस मौलिक प्रश्न पर भी विचार करना चाहिए कि हमें यह कब और कैसे पता लगेगा कि हमारा मन एकाग्र हो चुका है ?नियंत्रण क्या है?मन को नियंत्रित क्यों करें ?प्रायः हम एकाग्रता के लिए मन पर दवाव डालते हैं। लेकिन हमारा मन अन्य वस्तुओं में स्थापित रहता है और उन वस्तुओं से मन को निकालने की क्षमता हममें नहीं होती । इसके लिए विशेष अभ्यास आवश्यक है। हमें ज्ञान होना चाहिए कि मन की एकाग्रता की शक्ति से ही संसार से ज्ञान प्राप्त हुआ है। शक्ति और ओज एकाग्रता से ही आता है। विवेकानन्द कहते है कि

"Concentration is the essence of all knowledge, nothing can be done without it. Ninety percent of thought force is wasted by the ordinary human being, and therfore he is constantly committing blunders, the trained man or mind never makes mistake".

ईश्वरीय भाव, सामन्जस्य और व्यक्तित्व

व्यक्तित्व के समग्र विकास में ईश्वर विषयक धारणा, स्वरूप और सामन्जस्य के विविध स्वरूपों के महत्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती । संसार में जो भी कुछ प्रतिबिंबित है, जो जीवन है, वह सब ईश्वर की ही अभिव्यक्ति है। सारी प्रकृति और स्वतन्त्रता ईश्वर की आराधना है व्यक्तित्व निर्माण से ''सत्–चित्–आनन्द'' का बोध भाव और उससे साक्षात्कार से समन्वय सकारात्मक ऊर्जा प्रदान करता है। ईश्वर का विचार और ईश्वर के प्रमाण की वास्तविकता में, विश्वास व्यक्तित्व विकास का महत्वपूर्ण साधन है। जैसा कि वेद में वर्णित है कि समन्वय, शुद्धता, पूर्णता व्यक्तित्व निर्माण के लिए महत्वपूर्ण है। स्वामी जी का मानना है कि यदि हम ईश्वर को अनुभव करते हैं तो हम ईश्वर से बात कर सकते हैं, देख सकते हैं। अनुभव का सम्बन्ध आत्मतत्व ज्ञान के सत्य से होता है। व्यक्तित्व निर्माण से धर्म के महत्व को स्वामीजी ने एक सक्रिय तत्व माना । धर्म अनुभूति है। यह विचार–विमर्श नहीं, यह कोई सिद्धान्त भी नहीं है। धर्म मनुष्य को शाश्वत् जीवन की ओर अभिमुख करता है, यह मनुष्य को पशुता से मानवता और ईश्वरत्व की ओर प्रेरित करता है। इन्द्रिय सम्मत सुख प्राप्त करना मानवता का लक्ष्य नहीं, अपितु ज्ञान ही मनुष्य के जीवन का लक्ष्य है। इस प्रकार स्वामी जी कहते थे कि प्रत्येक धर्म सत्य है। धर्म को संकीर्ण, सीमित, अर्थों में नहीं लेना चाहिए । मनुष्य का यह सोचना कि सिर्फ एक ही धर्म है, एक ही पैगम्बर है, एक ही अवतार है, यह विचार गलत है। धर्म तो एक है परन्तु उसके अनुप्रयोग अनेक हैं। सच्चा धर्म तो विश्वव्यापी है। धर्म की व्यापकता में समझा जाना चाहिए ।

इस प्रकार मनुष्य के स्वभाव में, व्यक्तित्व विकास में मानवता , सद्भाव, सहनशक्ति, धैर्य, विश्वास, के सद्गुणों और विचारों के संचार तथा उन्नयन में धर्म, ईश्वर विषयक विचारों की भूमिका एवं परस्पर अनुपातिक समन्वय महत्वपूर्ण है।

कार्य–कर्तव्य अन्तर्सम्बन्ध और व्यक्तित्व

विश्व में आज हम जो भी कुछ देखतें तथा अनुभव करते हैं, मानव समुदाय की सभी प्रकार की गतिविधियां, विचार तथा उन्नतियां, उपलब्धियॉ यह सब मनुष्य के विचारों की कार्य स्वरूप में अभिव्यक्ति का ही परिणाम हैं। संसार में प्रत्येक व्यक्ति कार्य करता है। लेकिन सिर्फ ऐसे लोग जो स्वार्थी एवं अहंकारी है, जिनकी महत्वाकांक्षाए स्वंय के अतिरिक्त और कुछ नहीं सोचती जिनके लिए अपना स्वार्थ ही सब कुछ है वे कार्य नहीं करते । स्वामी जी ने स्पष्ट किया कि कर्मयोग स्वार्थ रहित कार्यों को करना है ऐसे कार्य जिससे मानव समाज को लाभ हो, उसका उन्नयन हो करणीय कार्य है। कर्तव्य से ही व्यक्तित्व का

निर्माण होता है। निर्धारित कर्तव्य का पालन ही मनुष्य का लक्ष्य है। स्वामी जी ने कर्तव्य को सकारात्मक स्वरूप में प्रस्तुत करते हुए व्यक्ति निर्माण प्रक्रिया का अक्षुण तत्व माना और कहा कि प्रत्येक कर्तव्य पवित्र है किसी कार्य के प्रति समर्पण ही कर्तव्य है यही ईश्वर की सेवा का उच्चतम स्वरूप है। अपने कर्त्तव्यों का पालन करते हुए व्यक्ति प्रभावशाली/उदात्त व्यक्तित्व का निर्माण कर सकता है। कर्त्तव्य का पालन करने की भावना एक पवित्र अनुभव है और जब हम कोई कार्य कर रहे होते हैं, तब यह नहीं समझना चाहिए कि इसके भी परे कुछ है क्योंकि सब कुछ कर्तव्य में ही निहित है कर्त्तव्य का पालन उपासना की तरह करना चाहिए, पूरा जीवन कर्त्तव्य पालन करते रहना ही व्यक्तित्व विकास का मूल मंत्र है।

सेवाभाव और व्यक्तित्व की व्यापकता

सेवा करने की भावना व्यक्तित्व के निर्माण को बहुआयामी बनाता है। व्यक्ति के पास सब कुछ हैं परन्तु दूसरों के प्रति सेवा करना और उन्हें कुछ देने का भाव नहीं है तो वह व्यक्ति संकीर्णता और कुंण्ठाग्रस्त होता है. नकारात्मक ऊर्जा के संचार के कारण व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास नहीं हो पाता है । मनुष्य पूरा जीवन अपने स्वंय को खुशी बनाने में निकाल देता है, जबकि वास्तविकता यह है कि दूसरों के लिए कार्य करने और दूसरों को खुशी प्रदान करने की भावना नैतिक व्यायामशास्त्र है, जिससे व्यक्तित्व का सही विकास होता है। नैतिक व्यायामशाला से व्यक्ति आध्यात्मिक दृष्टि से शक्तिशाली होता है। अच्छे कार्य और सेवाभाव से व्यक्ति के चित् की शुद्धि होती है तथा शिव के स्वरूप की अभिव्यक्ति होती है, दर्शन होते हैं। स्वार्थी भाव सबसे बड़ा पाप है। अधिक सम्पत्ति, अधिक प्रसिद्धि से सुख नहीं मिलता दूसरों के लिए, मानवता के लिए सेवा करना सच्चा सुख देती हैं यह विचार और कार्य ही स्वंय की मुक्ति और व्यक्तित्व विकास का एक मात्र मार्ग है। स्मरण रहे कि

"Self Sarifice, not self assertion, is the highest law of the universe... Religion comes with intense self- sarifice. Desire nothing for your self. Do all for others. This is to love and move and have your being in God".

समर्पण और व्यक्तित्व निर्माण

समर्पण भाव अथवा भक्ति भाव आध्यात्मिक धरातल पर ईश्वर के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है परन्तु यदि वह इसी भाव को सभी मनुष्यों के प्रति प्रगाढ़ प्रेम में वदलता है जिसमें किसी के प्रति घृणा नहीं हो तो वह सदैव के लिए सन्तुष्टि का अनुभव करता है। और यह प्रेम किसी भी अवस्था में भौतिक लाभ से कम नहीं होता है।

इस प्रकार समर्पण भाव व्यक्तित्व का ऐसा पक्ष है जो बिना किसी भय के पल्लवित होता है। इसमें सौदाबाजी और स्वार्थ का कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार समर्पण सम्पन्न व्यक्ति का मन और मस्तिष्क शुद्ध होता है। समर्पित व्यक्ति कर्म करने वाले व्यक्ति से बड़ा होता है। समर्पण का मतलब त्याग करना नहीं है। अपितु प्रेम और उच्चतम स्तर पर प्रेम है। भक्ति/समर्पण भाव के कारण व्यक्तित्व में चारित्रिक शुद्धता, ईमानदारी, और सद्गुणों का प्रादुर्भाव होता है।

चिन्तन, योग और व्यक्तित्व

व्यक्ति को शुद्धता का ज्ञान, स्वतन्त्र होने की अनुभूति और स्वतन्त्रता का बोध होना व्यक्तित्व के निर्माण में सकारात्मक योगदान देता है। व्यक्ति को वास्तविकता के ज्ञान का ज्ञान भी व्यक्ति को मजबूत बनाता है। यद्यपि व्यक्ति पूर्ण है। परन्तु यदि उसें इस बात का बोध नहीं कि किसे स्वीकार करें और किसका परिहार करें तो उसका व्यक्तित्व निरन्तर पूर्ण अथवा आदर्श नहीं रह सकता है। इसके लिए चिन्तन अनिवार्य है। व्यक्ति की उच्चतम अवस्था की अभिव्यक्ति चिन्तन से ही

उभरती है। स्वामी जी का कहना था कि

"The greatest help to spiritual life is meditation. In meditation we divest ourself of all material conditions and feel our divine nature. Any external help is not required in meditation. In perfect concentration the soul becomes actually free from the bond of the gross body and knows it self as it is".

इसी क्रम में स्वामी जी व्यक्तित्व निर्माण में योग को भी महत्वपूर्ण माना है। मानवजाति का अंतिम उद्देश्य, सभी धर्मो का अन्तिम उद्देश्य ईश्वर के साथ पुनः मिलन है।

"The ultimate goad of all mankind is but one.... re-union with God. But the method of attaining it may be vary with the different temperaments of men . The goad and the method employed for reaching it are called yoga".

उन्मुक्तता और व्यक्तित्व

व्यक्तित्व विकास के लिए उन्मुक्तता अनिवार्य हैं। मूलतः उन्मुक्तता का विचार मुक्ति अथवा मोक्ष का विचार है। व्यक्ति सुख–दुःख, अच्छे बुरे जीवन और मृत्य यहां तक कि संवेदनाओं से व्यक्ति मुक्ति चाहता है। काल, अन्तरिक्ष और कारण–कार्य सम्बन्ध ये सब बन्धन है और संसार में सभी इन बन्धनों में बंधे हुए हैं हमारा प्रत्येक कार्य और यहॉ तक कि प्रकृति भी इन बन्धनों से आवद्ध है। परन्तु सभी को उन्मुक्तता चाहिए स्वामी जी का अभिमत था कि हमारे चारों ओर जो है और जो महसूस होता है उसमें सभी उन्मुक्तता के लिए संघर्ष कर रहे हैं।

उन्मुक्तता प्राप्त करने के लिए हमें संसार में निर्धारित सीमाओं से परे जाना होगा। तथा पूर्ण साम्य स्थापित करना होगा। यही व्यक्ति का लक्ष्य है तभी व्यक्तित्व का सही विकास होगा ।

स्वामी जी की मान्यता थी कि उन्मुक्तता सृष्टि की प्रेरणा है और उन्मुक्तता ही लक्ष्य है। प्रकृति के नियम वह पद्धति है जिसके मार्गदर्शन में स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए संघर्ष कर रहें हैं। इस माध्यम से स्वामी जी ने व्यक्तित्व के उस पक्ष को भी अभिव्यक्त किया जिसमें व्यक्ति अपनी चेतना की उच्चतम अभिव्यक्ति अर्थात् स्वतन्त्रता चाहता है और उसके लिए ही संघर्षरत रहता है। स्वामी जी ने यह भी प्रश्न उठाया कि अन्ततः स्वतन्त्र होने अथवा पूर्णता प्राप्त करने के बाद क्या होगा? उन्होंने कहा कि पूर्णता के पश्चात् व्यक्ति अनन्त परमानन्द का जीवन व्यतीत करेगा । वह असीम स्वर्ग सुख प्राप्त कर सिर्फ सुख और ईश्वर के साथ परमानन्द में रहेगा। इस प्रकार मानसिक एवं भौतिक विषय वस्तुओं, तथा लक्ष्यों से आत्मा का वियोजन ही व्यक्तित्व का समग्र विकास है। प्रश्न यह उठना स्वाभाविक ही है इस प्रकार की स्वतन्त्रता सम्पन्न व्यक्तित्व कैसे बनें ?स्वामी विवेकानन्द ने ऐसे व्यक्तित्व के निमार्ण को सहज बनाते हुए तीन प्रकार के साधन वताए वे हैं, कर्म, उपासना, और ज्ञान। कर्म के अन्तर्गत एकनिष्ठ भाव, दूसरों की मदद करने का अविच्छिन्न प्रयास तथा दूसरों से प्रेम करना। उपासना के अन्तर्गत प्रार्थना में निरन्तर बने रहना, स्तुति करना तथा चिन्तन मनन करना। ज्ञान के अन्तर्गत चिन्तन मनन करते रहना आता है। स्वामी जी ने कहा है कि व्यक्ति पहले से ही स्वतन्त्र है लेकिन उसे स्वतन्त्रता पुनः खोजना है। यद्यपि व्यक्ति व्यक्ति सब कुछ जानता है परन्तु प्रत्येक क्षण वह भूल जाता है। इस प्रकार मनुष्य को जीवन पर्यन्त चेतन अथवा अचेतन अवस्था में स्वतन्त्रता को खोजते रहना चाहिए। व्यक्ति सदैव वन्धन मुक्त अर्थात स्वतन्त्र रहेगा यदि हम विश्वास करें, और आस्था रखें। स्वामी जी का आह्वाहन था कि

"You must retain great strength in your mind and words. "I am low, I am low;" repeating these ideas in the mind man belittles

and degrades himself. Therefor the Shastras say, He who thinks himself free, free he becomes; he who thinks himself bound, bound he remains.....this popular saying "As one thinks, so one becomes" is true. He alone who is always awake to the idea of freedom. becomes free, he who thinks he is bound, endures life after life in the state of bondage."

स्वामी जी इन सभी गुणों से परिपूर्ण व्यक्तित्व का विकास चाहते थे। उनकी मान्यता थी सम्पूर्ण उन्मुक्तता अर्थात् सम्पूर्ण स्वतन्त्रता से धन्यता और शाश्वत् शान्ति उत्पन्न होती है। जो स्वतन्त्रता तुम में है वही स्वतन्त्रता मुझमें हैं यही वास्तविक स्वतन्त्रता है। नैतिकता, निस्वार्थ भावनाओं का यहीं मूल आधार है। स्वामी जी ऐसे व्यक्तित्व चाहते थे जो अच्छे कार्य करे दूसरों के लिए कार्य करे और '' मैं और मेरे '' की संकीर्ण परिधि में परिरूद्ध न हो । क्योंकि स्वार्थ की कोई सीमा नहीं।

अभिन्नता और व्यक्तित्व निर्माण

जीवन के निर्माण और व्यक्तित्व के विकास में अभिन्नता विषयक चिन्तन से युक्त मनुष्य पूर्णत्व के निकट पहुंचता है । एक ऐसा व्यक्तित्व जो यह देखता और विचार करता है कि विविध स्वरूपों वाले इस विश्व को एक ही सत्ता संचालित करती है, जो अज्ञानता और जड़ता युक्त विश्व में अपरिमित जीवन का अनुभव करता है, जो ज्ञान और प्रकाश–युक्त जीवन से शान्ति का बोध करता हो, इस प्रकार का विचार भाव मानवीय तत्वों को पुष्ट करता है। विविधता से सम्पन्न विश्व में एक ही तत्व और सभी तत्वों के साथ एकात्मकता का भाव रखने वाला भाव आदर्श व्यक्तित्व का निर्माण करता है। इस प्रकार समाज के साथ भी अभिन्नता का विचार व्यक्तित्व को नई गति देता है। क्योंकि इस संसार के बिना एक अणु तक गतिशील नहीं हो सकता । संसार के बिना किसी भी प्रकार की प्रगति सम्भव नहीं। संसार के निर्माण की प्रत्येक कलाकृति एक इकाई है। सभी कृतियों और इकाइयों में स्वयं की उपस्थिति का बोध होना अभिन्नता का सूचक है। जब तक समाज की प्रत्येक इकाई स्वतन्त्र नहीं होती तब तक हम भी स्वतन्त्र नहीं हो सकते। इसलिए स्वतन्त्रता तथा अभिन्नता व्यक्तित्व से जुड़े हुए महत्वपूर्ण तत्व हैं।

पूर्ण व्यक्तित्व निर्माण के लिए व्यक्ति को स्वयं दूसरों में अनुभव करने की अनुभूति होनी चाहिए। इस भाव को पुष्ट करने कि हम सभी एक हैं, ईश्वर जो आप में है और वही सभी में है। इस एकात्मता का ज्ञान और साक्षात्कार जरूरी है। स्वामी जी ने कहा कि हम यह सुनते आए हैं कि एक दूसरे से प्रेम करो। लेकिन क्यों ? व्यक्तित्व की अभिन्नता का सिद्धान्त स्पष्ट करता है कि मैं सभी से प्रेम क्यों करूं ? क्योंकि वे और मैं एक ही हैं। मैं अपने भाई को प्यार क्यों करूं ? क्योंकि वह और मैं एक ही हैं। इस प्रकार यह अभिन्नता पूरे विश्व के साथ एकात्मता की परस्पर निर्भरता है। छोटे से केंचुए से लेकर बड़े से बड़े जीव–जन्तु में एक ही आत्मा है। उन सभी के मुखों से आप खाते हैं, सभी हाथों से आप काम करते हों सभी आँखों से आप देखते हों। करोंड़ों लोगों की बीमारियों को आप ही भोगते हों तथा उनके स्वास्थ्य की भी अनुभूति आप ही करते हों। इस प्रकार की अनुभूति करने वाला व्यक्तित्व समग्र होता है। स्वामी जी कहते हैं कि

" When this idea comes and we realize it, see it, then will misery cease, and fear with it, How can I die I. There is nothing beyond me, fear lease, and then alone come perfect happiness and perfect love. That universal sympathy, universal love, universal bliss that never changes, raises man above everything."

सत्य और व्यक्तित्व

स्वामी विवेकानन्द ने सत्य को व्यक्तित्व निर्माण का महत्वपूर्ण घटक माना है। उनकी

धारणा थी कि सत्य का शब्द कभी नष्ट नहीं होता। बहुत लम्बे काल तक सत्य छिपा रह सकता है लेकिन वह एक न एक दिन प्रकट होता ही है। क्योंकि सत्य, सदगुण और शुद्धता अनश्वर है। सभी सत्य शरीर की पवित्रता है सत्य पर किसी प्रजाति अथवा व्यक्ति का एकाधिकार नहीं होता क्योंकि सत्य आत्मा का स्वभाव है। इसी प्रकार व्यक्ति निर्माण और व्यक्तित्व विकास व्यक्ति का गुण हैं सभी को अच्छा व्यक्तित्ववान होना चाहिए। अच्छा व्यक्तित्व सम्पन्न बनना किसी एक वर्ग विशेष का अधिकार नहीं है।

"Truth, virtue and purity is indestruetible. All truth is eternal. Truth is nobody's property; no race, no individual can lay any exclusive claim to it..... Truth has to be made practical and simple so that it may penetrate every pore of human society."

स्वामी जी चाहते थे कि सत्य को व्यवहारिक बनाना चाहिए। सत्य को इतना साधारण और सहज बनाना चाहिए कि वह मानव समाज के रोम–रोम को भेद सके और समाज के प्रतिभाशाली व्यक्तियों, साधारण व्यक्तियों के मस्तिष्क की प्रेरक शक्ति व स्त्री, पुरूष, वच्चो की सम्पदा बन सके व्यक्ति सत्यनिष्ठ बन सके। वे सभी निगमन–तर्क ये सभी तत्व मीमांसाएं, से सभी ब्रह्म विज्ञान और धर्मानुष्ठान जो कभी अपने समय में सही और सार्थक रहे होगें लेकिन हमें उन विषयों को साधारण बनाना हैं और स्वर्णिम दिनों को वापस लाना है, जहॉ प्रत्येक व्यक्ति वास्तविकता और सत्य के साथ अपने लक्ष्य की साधना कर सके । स्वामी जी चाहते थे कि सत्य को व्यवहारिक वनाना चाहिए। सत्य को इतना साधारण और सहज बनाना चाहिए कि वह मानव समाज के रोम–रोम को भेद सके और समाज के प्रतिभाशाली व्यक्तियों, साधारण व्यक्तियों के मस्तिष्क की प्रेरक शक्ति व स्त्री, पुरूष, बच्चों की सम्पदा बन सके व्यक्ति सत्यनिष्ठ बन सकें। वे सभी निगमन–तर्क ये सभी तत्व मीमांसाए, से सभी ब्रम्ह विज्ञान और धर्मानुष्ठान जो कभी अपने समय में सहीं और सार्थक रहें होगें लेकिन हमें उन विषयो को साधारण बनाना हैं और स्वर्णिम दिनों को वापस लाना है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति वास्तविकता और सत्य के साथ अपने लक्ष्य की साधना कर सके।

✍ लेखक राजनीति विज्ञान के आचार्य एवं माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विवि में कुलाधिसचिव हैं।

****

अवतारी पुरुष श्रीमद् विवेकानन्द स्वामी

✍ अशोक पाण्डेय

हर युग में मानव कल्याण के पुनीत उद्देश्य के लिए महापुरुषों ने धर्म ध्वजाओं को थामा है। अद्वितीय मानवीय गुण, अप्रतिम ओज एवं असीम ऊर्जा तथा सकारात्मक सोच के द्वारा मानव कल्याण एवं सामाजिक चेतना के प्रवाह का पुनीत कार्य करने के कारण ही ऐसे व्यक्तित्व ईश्वरीय अवतार माने गये हैं। ऐसा माना जाता है कि जितने परोपकारी मनुष्य इस जगत में उत्पन्न हुए हैं, वे ईश्वर के ही अंश हैं। अपनी अप्रतिम मेधा से सरस्वती को अल्पकाल में प्रसन्न कर लेना, शास्त्रों से सार को ग्रहण कर लेना, आडम्बरों से परे नूतन सिद्धांत स्थापित कर उन्हें मानव मन में प्रतिबिम्बित कर लेना, कसौटी पर कसे बिना किसी भी मान्यता को स्वीकार न करना एवं कायिक, वाचिक एवं मानसिक रूप से परमार्थ में अर्पित होना जैसे विलक्षण गुणों से ओतप्रोत महापुरुष अवतार की श्रेणी में माने गये हैं।

उन्नीसवीं सदी को अधिभौतिक ज्ञान की प्रगति एवं खोज का मुख्य काल एवं यूरोप को इसका मुख्य केन्द्र माना जाता है। इस काल में भारतवर्ष के जिस महापुरुष ने पश्चिमी विद्वानों के मध्य आध्यात्मिक ज्ञान के महत्व को स्वीकृति दिलाई, वे चमत्कारी एवं अवतारी पुरुष थे स्वामी विवेकानंद। उन्होंने न केवल आध्यात्मिक ज्ञान को मान्यता दिलवाई वरन अपने अभूतपूर्व योग बल से इंग्लैण्ड, अमेरिका, जर्मनी आदि में इस ज्ञान पुंज को जानने की जिज्ञासा भी जागृत की।

सन 1863 में कलकत्ता के निकट जन्मे स्वामीजी का पहला नाम नरेन्द्रनाथ था। वे छुटपन से ही तेजस्वी, बुद्धिवान एवं चंचल स्वभाव के थे। खेलने, कूदने की उम्र से ही उन्हें धार्मिक समागमों एवं सभाओं में जाने एवं वाद–विवाद एवं तर्क करने की ऐसी ललक थी कि वे कई बार अपने तर्कों से बड़े–बड़े धर्मगुरुओं को निरुत्तर कर देते थे। अध्यात्म के अनुरागी स्वामीजी की बैरागी चेतना एवं तर्कशील बुद्धि हमेशा कुछ नया करने के लिए प्रयासरत रहती थी। सत्य की प्राप्ति में ही वे जीवन की सार्थकता समझते थे। स्वामी विवेकानंद एक सामाजिक दार्शनिक थे, जिनका पूरा ध्यान मनुष्य के ऐसे चरित्र निर्माण पर केन्द्रित था, जिससे वह देवत्व प्राप्त कर सके।

पूरे भारत में अपनी यात्रा के दौरान स्वामी विवेकानंनद जनता की भयावह गरीबी, भुखमरी और पिछड़ेपन को देखकर द्रवित हो गए। वे भारत के पहले आध्यात्मिक नेता थे, जिन्होंने इस कारण को समझा और सार्वजनिक रूप से स्वीकार किया कि भारत के पतन का असली कारण जनता की उपेक्षा है। भूखे लोगों के लिए भोजन और अन्य जरूरी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उन्होंने तत्काल प्रयास किये। इस समस्या की जड़ को समझते हुए उन्होंने कृषि और ग्रामोद्योग के तरीकों में सुधार पर जोर दिया। इन यात्राओं के दौरान एक बात स्पष्ट रूप से सामने आई कि इन समस्याओं से लड़ने के लिए सबसे पहले शिक्षा का प्रसार एवं सामाजिक चेतना को जागृत करने की आवश्यकता है। इन्हीं उद्देश्यों को लेकर उन्होंने रामकृष्ण मिशन की स्थापना की।

स्वामीजी जैसे देश प्रेमी बिरले ही होंगे, जिन्होंने देश प्रेम को सर्वोच्च वरीयता पर रखा। एक बार अमेरिका में स्वामीजी के भाषण से प्रभावित होकर किसी महिला ने उनसे पूछा था कि मैं आपके लिए क्या कर सकती हूँ, तो स्वामीजी ने उत्तर दिया 'भारत के प्रति प्रेम जताकर'। इसी प्रकार कई वर्षों के पश्चिम के प्रवास के पश्चात जब उनसे पश्चिम के ऐश्वर्यपूर्ण जीवन की तुलना करते हुए भारतीय जीवन के

बारे में पूछा गया तो उनका उत्तर था ''भारत की पवित्र भूमि मेरे लिए तीर्थ स्थल है।'' देश से इतना प्रेम कि वे सभी से आह्वान करते थे कि भारत माता की आराधना करो एवं उन पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करने के लिए हमेशा तत्पर रहो।

स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि ''कोई भी व्यक्ति बौद्धिक एवं मानसिक उत्कर्ष पर तब तक नहीं पहुॅच सकता जब तक वह शारीरिक रूप से शुद्ध या पवित्र न हो। जो लोग अनैतिक होते हैं वे कायर और कमजोर होते हैं एवं नैतिक लोग हमेशा बहादुर होते हैं इसलिए नैतिक बनो एवं सहानुभूति रखो।'' नैतिकता एवं सद्चरित्र की प्रेरणा देने वाले स्वामीजी ने अपने जीवन में स्वयं ऐसा आचरण किया जिनसे कोई भी व्यक्ति प्रभावित हुए बिना रह नहीं पाएगा। यह उनके चरित्र का वैशिष्ट्य था जिसे कोई भी न चाहकर अपने जीवन में आत्मसात करने को उद्यत रहता था। विश्व के सुधारकों अथवा दार्शनिकों ने जब भी कुछ उद्गार व्यक्त किए अथवा संदेश दिए उसकी कोई–न–कोई सीमा दिखती है। वे सामाजिक, राजनैतिक और भौगोलिक सीमाओं से ही आबद्ध दिखाई देते हैं पर स्वामीजी का चिंतन परक संदेश सदैव ही वैश्विक कल्याण की अनुगूॅज करता दिखाई देता है।, वे मानवीय चेतना को व्यक्ति से समष्ठि की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा देते हैं। वे इस बात को भी मानते थे कि इतिहास के पुनरावलोकन से यह स्पष्ट है कि मानव चेतना के सुधार के लिए के जितना प्रयत्न हमारे महान देश में किया गया है, उतना विश्व के किसी अन्य देश में नहीं हुआ, इसके लिए उनकी आलोचना करने के बजाय उन्हें संस्कारित और जागरूक करने की आवश्यकता है।

अपने अल्प जीवनकाल में आध्यात्म, धर्म, सामाजिक चेतना प्रसार, शिक्षा, विज्ञान तथा तकनीक जैसे लगभग सभी प्राचीन एवं आधुनिक विषयों पर स्वामीजी ने अपने विचार रखे। युवाओं को सही दिशा में गढ़ने एवं उनका मार्गदर्शन करने के लिए स्वामीजी ने समय समय पर दिए गए संदेशों एवं उनको पुष्ट करने के लिए दिए गए उदाहरणों में राष्ट्र की युवाशक्ति को बहुमुखी गुणों को अपने अंदर सम्मिलित करने का आह्वान किया। भारत के पुनरूत्थान तथा निर्माण में वे देश की तरूणाई को शाश्वत जीवन बनाने का संदेश देते थे। उनका आह्वान था कि हमारी युवा शक्ति के स्नायु इस्पात जैसे मजबूत हों। स्वामी जी का कहना था राष्ट्रभक्ति के लिए बलशाली शरीर की आवश्यकता है। एक बार एक युवक स्वामी जी के समीप आया और बोला, 'स्वामी जी, मुझे गीता ज्ञान दीजिए।' उन्होंने उत्तर दिया कि, 'मेरे तरूण मित्र, शक्तिशाली बनो, मेरी तुम्हे यही सलाह है। तुम गीता के अध्ययन की अपेक्षा फुटबाल के द्वारा ही स्वर्ग के अधिक समीप पहुंच सकोगे। स्वामी विवेकानन्द ने अपार ऊर्जा के साथ बुद्धि, हृदय तथा आत्मा के विकास को अनिवार्य माना।

आध्यात्म के बारे में स्वामीजी का मानना था कि आध्यात्मिक उन्नति से ही सबकी जागृति हो सकती है। आध्यात्म हमारी अंर्तचेतना को जागृत करने का एक माध्यम है। मनुष्य यदि– मैं कौन हूँ? मेरा इस दुनिया में आने का उद्देश्य क्या है?पाप क्या है? पुण्य क्या है ? जैसे प्रश्नों का उत्तर जान पाये तो अपने मानव होने की सार्थकता को काफी हद तक सिद्ध कर सकेगा। ''आध्यात्म का अस्तित्व, सभ्य मानव समाज की संरचना कर, उसे सत्मार्ग का दिशा दर्शन देकर उन्नत मानवता एवं मानव मूल्यों के साथ भौतिक जीवन जीने कला सिखाने से ही, सार्थक हो सकता है। स्वामीजी कहते थे कि ''भले ही कोई व्यक्ति नियमित रूप से मंदिर जाता हो, लेकिन अगर वह अन्य प्राणियों के प्रति दयालु नहीं हैं, तो उसे भगवान नहीं मिल सकता। ''उनका कहना था कि ''भगवान अपने भीतर है, उसे कहीं और खोजने की आवश्यकता नहीं है।'' स्वामीजी के अनुसार आध्यात्म एवं विज्ञान एक दूसरे के विरोधी नहीं बल्कि परस्पर पूरक हैं। दरअसल

आध्यात्म एवं विज्ञान का आपस में अटूट रिश्ता है। जैसे महाभारत में वर्णित घटनाक्रम के अनुसार संजय अपनी दिव्य दृष्टि से कुरूक्षेत्र में हो रहे युद्ध का आंखों देखा हाल सुना रहे हैं, जो आध्यात्म था लेकिन कालांतर में दूरदर्शन के आविष्कार के बाद यह दूरदृष्टि रूपी आध्यात्म विज्ञान बन चुकी है। अर्थात् ''विज्ञान वह आध्यात्म है जिसे हमारे ज्ञान ने समझ लिया है एवं आध्यात्म वह विज्ञान है जिसे हमें ज्ञान द्वारा समझना अभी बाकी है।''

धर्म के बारे में स्वामीजी का स्पष्ट मत था कि ''धर्म मनुष्य में पहले से मौजूद दिव्यता की अभिव्यक्ति है।'' धर्म के बारे में ऊँच–नीच के अंतर को समाप्त करने की पहले करते हुए पहली बार स्वामीजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि ''वेदों एवं धर्मग्रंथों के अध्ययन का अधिकार प्रत्येक व्यक्ति को हैं।'' धर्म के बारे में उनका दृष्टिकोण बड़ा व्यापक था। उनका कहना था कि ''प्रत्येक धर्म अपनी विरासत कायम रखते हुए अन्य धर्मों के सार–तत्व को ग्रहण करे, और उससे समृद्ध होकर अपनी प्रकृति के अनुसार प्रगति करें।''

उन्होंने सामाजिक चेतना एवं शिक्षा के प्रसार के लिए सम्पूर्ण जीवन को समर्पित किया। उन्होंने अज्ञानता दूर करने का एकमात्र माध्यम शिक्षा को ही माना। लेकिन उनकी शिक्षा का तात्पर्य भिन्न था उनका कहना था कि ''शिक्षा मनुष्य में पूर्णता का प्रकटीकरण है।'' वे शिक्षा के माध्यम से विद्यार्थी के अंदर विद्यमान आत्म–तत्व की अनुभूति कराने पर बल देते थे। स्वामीजी का पूरा ध्यान आत्मबल के विकास पर केन्द्रित रहता था। वे स्वयं में परमब्रम्हा को जागृत करने पर बल देते थे। शिक्षा में संस्कारों, धर्मों एवं मूल्यों को समाहित करने पर उनका जोर रहता था।

पूर्णतः आध्यात्मिक विचारों के बावजूद स्वामीजी को नवीनता एवं तकनीक से कोई परहेज नहीं था वरन् वे नवोन्मेष एवं विज्ञान तथा तकनीक के प्रबल समर्थक थे। उन्होंने तकनीक और वैज्ञानिक पक्ष को भी विकसित करने पर उतना ही जोर दिया जितना कि आध्यात्मिक पक्ष को। उन्होंने तो यहाँ तक कहा कि ''यदि हमें भारत का सही विकास करना है तो हमें पश्चिम से तकनीक एवं विज्ञान का नया ज्ञान लेने से संकोच नहीं करना चाहिए।'' अर्थात दूसरे पारंपरिक महापुरूषों के समान उनका पश्चिम या उसकी तकनीक से कोई बैर या विरोध नहीं था, वरन् मानव उत्थान के लिए तकनीक के प्रयोग के लिए वे आवश्यक बताते थे भले ही हो पश्चिम की हो या पूर्व की।

स्वामीजी का मूल मंत्र था कि ''अपने अंदर की दुर्बलता को दूर करें, अपने अंदर के ब्रम्ह को जगायें।'' स्वामीजी का मानना था कि सभी में एक ही चेतना प्रवाहित है, अतः सभी को परस्पर एक दूसरे से जुड़ना चाहिए। केरल कोकिल नामक मराठी मासिक पुस्तक में स्वामी विवेकानंद के दृढ़ संकल्पों एवं उनके मिशन के विषय में लिखा है कि ''लोकसेवा ही अपनी माता है, वैराग्यवृत्ति ही अपनी अर्धांगिनी है, भिक्षा ही अपनी कुलस्वामिनी है, जीव को कष्ट देना ही अपना व्रत है, मनोनिग्रह ही अपना मंदिर है, इंद्रियदमन ही अपना व्यवसाय है, शांतवृत्ति ही अपनी उपासना है, धरुर्मोपदेश ही अपना कर्त्तव्य है और आत्मस्वरूपानंद ही अपना बिहारोद्यान है। उनका आग्रह था ''भारत का विकास केवल स्वप्न देखने मात्र से नहीं होगा, वरन उसके लिए हमें कठिन परिश्रम करना होगा।'' स्वामीजी के जीवन से प्रेरणा लेकर हमें सुनियोजित रूप से कारगर योजना बनानी होगी एवं उस महान योगी द्वारा देखे गए विकसित भारत के स्वप्न साकार करने की दिशा व्यावहारिक रूप से भगीरथ प्रयास करने होंगे, तभी सच्चे अर्थों में भारत का समग्र विकास हो सकेगा।

✍ **लेखक एक स्वतंत्र लेखक हैं।**

स्वामी विवेकानन्द और उनका शिक्षा दर्शन

✍ डॉ. कृष्णचन्द्र पाण्डे

रत्नगर्भा धरा विश्वबन्धु भारत जननी ने अपने आंचल में अगणित रत्न छिपाये हुए हैं। जिन्होंने समय–समय पर न केवल भारत भूमि को गौरवान्वित किया है। अपितु सम्पूर्ण विश्व का मार्गदर्शन किया है। विश्व को भौतिकता की तेज दौड़ से बाहर लाकर उसे समग्र जीवन पद्धति का मार्ग दिखाया है। विश्व को विज्ञान और आध्यात्म से जोड़ने का मार्ग प्रशस्त किया है। विज्ञान और आध्यात्म की कड़ी के रूप में जिन महापुरूषों ने विश्व का मार्ग आलोकित किया है उनमें अग्रणीय हैं भारत माँ के आधुनिक सपूतः युवकों के प्रेरणा स्त्रोत स्वामी विवेकानन्द।

आज से 150 वर्ष पूर्व 12 जनवरी सन् 1863 की पौष संक्रान्ति को जब प्रकृति में संक्रान्ति हो रही थी। भगवान भास्कर अपनी राह बदल रहे थे उसी समय प्रातः 6 बजकर 33 मिनट पर कलकत्ता के सिमुरिया पल्ली गांव में एक शिशु का जन्म हुआ। उनके पिता का नाम विश्वनाथ तथा माता का नाम भुवनेश्वरी था। उसका नाम रखा गया – 'वीरेश्वर' माता प्रेम से उसे 'बिले' कहती थी और पिता ने कहा मेरे पुत्र का नाम होगा 'नरेन्द्र नाथ'। उनके पिता विश्वनाथ दत्त कलकत्ता हाईकोर्ट के प्रसिद्ध वकील थे। उनके पिता उन्हें पाश्चात्य जीवन शैली में ढ़ालना चाहते थे परन्तु माता भुवनेश्वरी देवी एक धार्मिक महिला थी वे उन्हें रामायण, महाभारत की कहानियाँ सुनाया करती थी। इस प्रकार की कहानियाँ सुन–सुनकर बालक बुद्धि, सत्यप्रियता तथा निर्भीकता ने उनके जीवन को एक श्रेष्ठ दिशा प्रदान की। स्वामी रामकृष्ण परमहंस के संसर्ग ने उन्हें विश्व विजेता स्वामी विवेकानन्द बना दिया। उनके विचार सदियों तक युवकों को प्रेरित करते रहेंगे। आईये उनके कुछ महत्वपूर्ण विचार बिन्दुओं का स्मरण करें।

स्वामी विवेकानन्द के द्वारा दिया गया शिकागो विश्व धर्म सम्मेलन का प्रथम भाषण सम्पूर्ण विश्व की मानव जाति के लिए पाथेय बन गया। भारतीय संस्कृति का विराट स्वरूप उनके संक्षिप्त भाषण में समाहित था। विश्व के विभिन्न देशों से आये सभी प्रतिनिधियों के लिए आश्चर्य चकित करने वाले शब्दों में भारत का 'विश्वगुरूत्व' प्रकट हो गया। उन्होंने स्वामी रामकृष्ण परमहंस की उस वाणी को सत्य कर दिया जिसमें उन्होंने कहा था 'तू विश्व में आध्यात्मिक चेतना का संचार करेगा।'

स्वामी विवेकानन्द ने समाज के प्रत्येक वर्ग को शिक्षित किया। उन्होंने युवकों को याद दिलाया–कर्मण्येवाधिकारस्ते या फलेषु कदाचन।' तुम्हारा कर्म करने का अधिकार है फल का नहीं। उन्होंने कहा कभी निराशा को पास मत आने दो, निर्भय होकर जीवन संग्राम में कूद पड़ो। उन्होंने युवकों को प्रेरित किया और कहा स्वाभिमानी बनो, अपने सामर्थ्य तथा बुद्धि का उपयोग अपने राष्ट्र तथा समाज के उत्थान में लगाओ। शिक्षित बनो, बलिष्ठ बनो, अपने पूर्वज की शौर्यगाथायें याद रखो। वही तुम्हारा सम्बल हैं।

स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा जगत के लिए विचार विशेष रूप से उल्लेखनीय है शिक्षा ही वास्तव में मनुष्य का निर्माण करती है। स्वामी जी का सर्वाधिक ध्यान व्यक्ति निर्माण पर था उनका कथन है कि व्यक्ति स्वयं में पूर्ण है, परन्तु इसकी अभिव्यक्ति शिक्षा के द्वारा होती है। शिक्षा आत्मा का संगीत है उसकी मधुर ध्वनि से समग्र जीवन मधुमय हो जाता है। शिक्षा अन्तकरण के ज्ञान को

उद्‌भाषित करती है। शिक्षा ही मनुष्य में चरित्र की स्थापना करती है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य में आत्मविश्वास जगता है, शिक्षा ही बालक के हृदय में एकाग्रता निर्माण करती है। शिक्षा ही संस्कृति का संरक्षण, संवर्धन तथा नयी पीढ़ी में संस्कृति का हस्तांतरण करती है। शिक्षा ही व्यक्ति को आत्म निर्भर बनाती है, बालक के अन्दर छिपी कलात्मक वृत्ति तथा विशेष अभिरूचि का विकास करती है। शिक्षा जीने की कला सिखाती है।

वर्तमान शिक्षा के दोष –

वर्तमान शिक्षा प्रणाली विसंगतियों का खजाना है जिसमें अच्छाईयां कम तथा कमियां अधिक है। वर्तमान शिक्षा बालक को मनुष्य नहीं बना सकती है, जो शिक्षा अपने पूर्वजों, अपनी संस्कृति तथा भाषा के प्रति अश्रद्वा निर्माण करती हो वह मृत्यु से भी भयावह होती है। आज कोमल हृदय बालक पाठशाला में जाता है वह यह सीखता है कि मेरा बाप मूर्ख है, मेरा दादा पागल है। मेरे जितने शिक्षक है वे सब मिथ्यावादी हैं और मेरे सभी पवित्र धर्मग्रन्थ गपोड़बाजी है। इस प्रकार शिक्षा में शिक्षित व्यक्ति राष्ट्र और समाज का कभी भी हित नहीं कर सकता।

केवल जानकारियों के ढेर को शिक्षा नहीं कहा जा सकता। जो शिक्षा जीवन को आलोकित न क कर सके उसे शिक्षा नहीं कहा जा सकता। शिक्षा वही है जो मनुष्य के चरित्र का गठन करती है। स्वामी जी ने देश के युवकों में प्रखर एवं विशुद्ध राष्ट्रीयता का निर्माण करने के लिए आह्‌वान किया और कहा – आज सभी देवी देवताओं की उपासना का परित्याग कर केवल भारत माँ की उपासना करो।

नारी शिक्षा –

स्वामी विवेकानन्द ने भारत वर्ष की सभी माताओं अर्थात् महिलाओं की शिक्षा तथा उनके सामाजिक विकास और उत्थान पर विशेष जोर दिया। उन्होंने अपने प्रवचनों में महिलाओं के उत्थान और कल्याण के लिए महिलाओं को आगे आने का निवेदन किया इसी में से मारग्रेट जैसी महिला आगे आयी और भगिनी निवेदिता के नाम से स्वामी जी के आह्‌वान पर महिलाओं के कल्याण में लग गयी।

महिलाओं की शिक्षा तथा महिला समाज के पुनरुत्थान का कार्य स्वामी जी की दृष्टि में अति महत्व का था। इसी दृष्टि को ध्यान में रखकर उन्होंने स्त्री स्वतंत्रता तथा स्त्री शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया। उनका कहना था कि भारतीय नारी अपनी समस्याओं को हल करने में स्वयं सक्षम है। हमारा कार्य उनको शिक्षित करना मात्र है। उन्होंने स्मरण दिलाया कि वैदिक काल में नारियों को पुरूषों के साथ समान शिक्षा का अधिकार था वहां स्त्री तथा पुरूषों में कोई भेद नहीं किया गया है।

भारत की नारी पवित्र और त्याग की मूर्ति है उसके पास बल और शक्ति है। भारतीय महिला ही बालक की प्रथम गुरू है। महिला जिस प्रकार से शिक्षित होगी बालक का भविष्य भी उसी प्रकार का होगा। नारी समाज की सच्ची शिक्षिका है उसका शिक्षित होना समाज के लिए सर्वाधिक उपयोगी है।

शारीरिक शिक्षा –

स्वामी जी का यह मानना था कि स्वस्थ और बलिष्ठ शरीर ही सभी प्रकार के ज्ञान को समझने में सहायक है। इसीलिए उन्होंने युवकों को गीता पढ़ने से पहले फुटबाल खेलने का आह्‌वान किया। उन्होंने युवकों को कहा शरीर में तेजस्वी रक्त होने पर तुम श्रीकृष्ण की महान शक्ति और प्रतिभा को अधिक अच्छी तरह समझ सकोगे। जिस समय तुम्हें अपने पौरूष का भान होगा उस समय तुम्हें गीता उपनिषद और आत्मा की महिमा अच्छी प्रकार से समझ में आयेगी। फौलादी शरीर ही राष्ट्र की अप्रतिम शक्ति है।

उसके लिए नित्य व्यायाम आवश्यक है। विद्यालयों में शारीरिक शिक्षा आवश्यक हो ताकि बालक शारीरिक और बौद्धिक दोनों दृष्टि से बलवान हो सके।

संस्कृत शिक्षा –

बालक की शिक्षा, मातृभाषा में ही होनी चाहिए परन्तु उसे संस्कृत शिक्षा अवश्य देनी चाहिए। क्योंकि संस्कृत शब्दों की ध्वनि से ही राष्ट्र की प्रतिष्ठा शक्ति तीव्र होती है। स्वामी जी का मानना था कि यदि भारत को समझना है तो संस्कृत शिक्षण आवश्यक है। वेद, उपनिषद सब प्रकार के ज्ञान विज्ञान के आधार है। उनको समझने के लिए संस्कृत ज्ञान आवश्यक है। संस्कृत व्याकरण सर्वाधिक वैज्ञानिक है। संस्कृत के उच्चारण से वाणी में शुद्धता आती है। वेदों के मन्त्रों से पर्यावरण शुद्ध होता है। वेद मन्त्र की ध्वनि अनेक प्रकार के मानवीय विकारों का शमन करती है। संस्कृत से मन की पवित्रता और आत्मविश्वास में वृद्धि होती है।

चरित्र निर्माण में भाषा की भी महती भूमिका रहती है। अतः संस्कृत की भूमिका चरित्र में महत्वपूर्ण है। स्वामी जी ने उपनिषदों का गहन अध्ययन किया और उसी के आधार पर विशिष्ठ चिन्तन शक्ति का निर्माण हुआ।

स्वामी विवेकानन्द के विचारों की व्यापकता का वर्णन असम्भव है परन्तु उनके विचारों का सार भारतीय जनमानस में समाया हुआ है। विशेष रूप से युवकों के प्रेरणा पुंज रहे स्वामी विवेकानन्द की सार्ध सती वर्ष पर उनके विचारों का स्मरण कर राष्ट्र निर्माण की दिशा में अपने कदमों को आगे बढ़ाने के लिए युवकों को उचित दिशा प्रदान हो। स्वामी विवेकानन्द ने समाज के प्रत्येक वर्ग को शिक्षित किया। शिक्षकों के विषय में स्वामी जी ने कहा है कि शिक्षक ही सच्चे गुरू हैं। अपने शिष्य की वृत्ति के अनुसार वे अपनी समस्त शक्ति का उपयोग करें। शिक्षक की विशेषताओं के विषय में उन्होंने कहा कि –

1) उसे धर्म शास्त्रों का ज्ञान हो।
2) उसका हृदय और मन पवित्र हो तथा
3) शिक्षक को व्यक्तिगत स्वार्थ से दूर रहना चाहिए।

स्वामी जी ने धनिक वर्ग को कहा कि उन्हें जो धन प्राप्त हुआ है। उसे समाज सेवा में लगाये। जनसाधारण की दरिद्रता को दूर करना सच्चे अर्थ में धन का उपयोग है तथा यही ईश्वर की पूजा भी।

स्वामी जी के शिक्षा के समस्त बिन्दु समाज कल्याण और राष्ट्रोन्नति की दिशा में पाथेय है। जो सदैव मनुष्यों को प्रेरित करते रहेंगे। उनके विचारों के द्वारा समाज की संगठित शक्ति के माध्यम से अपने राष्ट्र को पुन विश्वगुरू के सिंहासन पर आरूढ़ किया जा सकता है।

✍ **लेखक भारतीय धरोहर पत्रिका के संपादक हैं।**

****

हिन्दू राष्ट्र का महानायक : स्वामी विवेकानंद

✍ डॉ. हेमेन्द्र कुमार राजपूत

सभी धर्मों के प्रति हम हिन्दू सिर्फ सहिष्णुता ही नहीं रखते बल्कि सभी धर्म सत्य पर आधारित हैं, ऐसा हमारा पूर्ण विश्वास है। दूसरे धर्मों द्वारा छले हुए एवं निर्वासित हुए किसी भी धर्म के निराश्रितों को जिस जाति ने हमेशा आश्रय दिया है उस जाति में जन्म लेने के कारण मुझे अभिमान है। जिस समय निष्ठुर अत्याचारी रोमनों द्वारा यहूदी धर्म के पवित्र देवालय भग्न किये गये तब कुछ प्रबुद्ध यहूदियों के दक्षिण भारत पहुँचने पर मेरी हिन्दू जाति ने ही उन्हें आश्रय दिया। वैभवशाली पारसी जाति के बचे हुए लोगों को जो धर्म आश्रय देकर आज भी उनका प्रतिपालन करता है, जो धर्म पूरे विश्व को सहिष्णुता तथा सभी मतों को मान्यता देने की सीख देता है उस धर्म में जन्म लेने के लिए मुझे गौरव अनुभव होता है। भिन्न-भिन्न स्थानों से उद्‌गम पाने वाले जल प्रवाह जिस प्रकार अंत में महासागर में मिलकर एक हो जाते हैं उसी प्रकार अपनी-अपनी रूचि के वैचित्य के अनुसार अलग-अलग सरल अथवा टेड़े-मेड़े या वक्र मार्ग से जाने वाले सभी पथिक हे प्रभो! आपमें ही समाहित होते हैं । हमारे यहाँ भगवान श्री कृष्ण ने गीता में कहा है - जो लोग जिस भी रीति से मुझे भजते हैं, उसी रीति से मैं उनको फल देता हूँ । हे पार्थ! मनुष्य किसी भी मार्ग का अवलंब करे, अंत में वह मेरे मार्ग पर ही पहुँचता है। सांप्रदायिक, संकीर्ण व ऐसे ही अनर्थकारी तथा धर्मांध लोगों द्वारा दीर्घकाल तक इस सुन्दर धरा पर शासन किया गया। उनके अगणित अत्याचारों से यह पृथ्वी अनेक बार रक्तरंजित हुई है । संस्कृतियों के विध्वंस के कारण अनेक राष्ट्र हताश हुए हैं । ये भयंकर राक्षस न होते तो अपना मानव समाज आज की अपेक्षा अधिक उन्नत हो गया होता। अमेरिकावासी मेरे बहनों और भाइयों! इस धर्म परिषद् के सम्मानार्थ आज सुबह निनादित किया हुआ घंटानाद, धर्मान्धों द्वारा धर्म के नाम पर शस्त्र अथवा कलम के द्वारा किये जाने वाले छल-बल के एकमेव लक्ष्य तथा मार्ग से जाने वाले समस्त असहिष्णु व्यक्तियों या पंथियों के लिए मृत्युनाद सिद्ध होगा।'' - उक्त धर्म सम्मत विचार स्वामी विवेकानंद ने संयुक्त राज्य अमेरिका के शिकागो शहर में 11 सितम्बर 1893 को विश्व सर्व धर्म परिषद् के सामने तीन मिनट के एक भाषण में रखे थे।

शिकागो के इस भाषण से पूर्व अमेरिका में तो क्या, भारत में भी उन्हें कोई यश प्राप्त नहीं हुआ था, भले ही स्वामी जी ने सम्पूर्ण भारत का भ्रमण-प्रवास किया था किन्तु शिकागो के इस भाषण के बाद जैसे ही अमेरिका के सभी समाचार पत्र-पत्रिकाओं में स्वामी जी के चित्र के साथ उनका धर्म के प्रति यह विचार प्रकाशित हुआ वैसे ही विश्वपटल पर स्वामी विवेकानंद और उनका धर्म विचार स्वर्ण अक्षरों में अंकित होता चला गया, तब भारत देश ने भी अपने को गौरवान्वित होने का अवसर प्राप्त किया। भारत के एक युवा संत ने अमेरिका की भूमि पर हिंदुत्व का ऐसा ध्वज फहराया जिसे दुनिया के लोग भविष्य में कदापि भूला न सके। भारत के लोगों को स्वामी विवेकानंद ने अपने जीवन-विचार से जो करके दिखाया उससे बहुत कुछ प्रेरणा लेने की आवश्यकता है। यह कौन जानता था कि भारत भूमि के कोलकाता शहर के सिमुलियापल्ली मुहल्ले में 12 जनवरी 1863 को मकर संक्रांति-पौष कृष्ण सप्तमी के दिन नरेंद्रनाथ दत्त जन्म

लेकर और ईश्वरचंद्र विद्यासागर के स्कूल में विद्या ग्रहण कर एवं श्री राम कृष्ण परमहंस का शिष्य बनकर माँ काली देवी की अनुकम्पा से अपनी माता श्रीमती भुवनेश्वरी देवी एवं पिता विश्वनाथ दत्त का नाम पूरी दुनिया में रौशन करेगा। केवल माँ बाप का नाम ही नहीं बल्कि भारत के नाम को सही अर्थों में पहचान और हिन्दू भूमि के हिंदुत्व की सार्थक पहचान स्वामी विवेकानंद बनकर विश्व को करायेगा। अपने कर्मयोग और सत्व ज्ञान योग से भारत के इतिहास के पन्नों पर ही नहीं बल्कि विश्व इतिहास के पन्नों पर भी 30 वर्ष का संत युवक 9 वर्षों की छोटी सी अवधि में ही दृढ़ता से लिखवा गया जिसे भारत देश अपने स्वप्न में सदियों से संजोये बैठा था। स्वामी विवेकानंद ने विश्व को दर्शन करा दिया कि भारत के नवयुवक में कितनी शक्ति है, कितना ज्ञान है और कितनी आध्यात्मिक भक्ति है।

शिकागो धर्म महासभा, जो 27 सितम्बर 1893 तक चली, में स्वामी विवकानंद के 12 भाषण हुए। जब स्वामी विवेकानंद की अपूर्व सफलता का समाचार भारत को मिला तब यह आनंदोल्लास के साथ नगर-ग्राम में फैलने लगा। हिमालय से इंदू महासागर पर्यन्त की हिन्दूभूमि पर हिंदुस्तानी इस अपरिचित संन्यासी की दिग्विजय की कथा सुनने लगे। फलत: हिन्दूभूमि-भारत भूमि, भारतीय-जन और भारतीय हिन्दू संस्कृति के इतिहास का एक गौरवमय अध्याय लिखा जाने लगा। स्वामी विवेकानंद ने अपने भाषणों में धर्म-अधर्म हिन्दू-हिंदुत्व, हिन्दू संस्कृति, हिन्दू अध्यात्म, वेदांग, युवाशक्ति, प्रबुद्ध भारत, नारी संवर्धन, गांवों का सरलजीवन और अस्पृश्यता जैसे विषयों पर अधिक बल दिया। ईसाई मिशनरी ने पहले से ही यह प्रचार कर यूरोप और अमेरिका में भारत के विरुद्ध वातावरण बना कर रखा था कि ''भारत जंगल और सांपो-सपेरों का देश है। भारतीय (हिन्दू) असभ्य हैं। इन्हें सभ्य बनाने के लिए मिशनरी को भारत में जाना है।'' इसी बहाने से ईसाई मिशनरी भारत में आकर ईसाइयत का प्रचार करते रहे और धर्मांतरण करते रहे और आज भी कर रहे हैं। स्वामी विवेकानंद ने ईसाईयों के इस दुष्प्रचार के मायाजाल को छिन्न-विछिन्न कर दिया। अमेरिका और यूरोप में स्वामी विवेकानंद के द्वारा दिए गये भाषणों का सारतत्व और मौलिक चिंतन मंथन से उत्पन्न मक्खन का रसास्वादन अवश्य कराना चाहूंगा, जिससे उनके विचार सार पर गर्व करते हुए हम जनमानस तक उसका प्रचार-प्रसार कर सके। यह हमारे लिए सौभाग्य की बात होगी कि हम उनके प्रमुख सात विचारों के साथ स्वयं को समझे---

1. हिमालय से इंदू महासागर (हिन्दमहासागर) पर्यन्त भूमि हिन्दू भूमि है। यह हमारा भौगोलिक नाम है जो प्रकृति ने हमें दिया। हिन्दू भूमि पर रहने वाले हम सब हिन्दू हैं चाहे हम किसी भी पूजा-उपासना-पद्धति को मानते हों। हिन्दू कहने से हमारा पंथ-सम्प्रदाय-उपासना नहीं बदल जायेंगे इसलिए गर्व से कहो हम हिन्दू हैं।

2. ऋषभ देव के पुत्र भारत के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा और दुष्यंत-शकुंतला के पुत्र भरत के नाम से इस भूमि को माँ भारती कहा जाने लगा । यह भूमि हमारी माँ है। माँ की तरह इसने हमें पालित-पोषित किया है इसलिए हम भारतीय है। यह हमारा सांस्कृतिक नाम है। स्वामी जी ने कहा- ''गर्व से कहो हम भारतीय हैं।''

3. हमारी इस हिन्दू भूमि-भारत भूमि के ऋषियों-मुनियों, हमारे पूर्वजों ने जीवन जीने के लिए कुछ विशेष नियम उपनियम व सिद्धांत हमें पीढ़ी दर पीढ़ी जीवन कसौटी पर मूल्यांकित करके प्रदान किये

जिन्हें अम्मं कहते हैं। *अम्मं धारयति इति धर्म* :- इन जीवन पद्धति के नियमों को धारण करना ही धर्म है। ये नियम हमारे पूर्वजों ने सम्पूर्ण सृष्टि के कल्याण के निमित्त बनाये, सम्पूर्ण मानव जाति के हित के लिए बनाये इसलिए इसे मानव धर्म कहा गया। मानव धर्म की उत्पत्ति हिन्दूपूर्वजों ने की इसलिए इसे हिन्दू धर्म कहा गया अत: हिन्दू धर्म ही मानवधर्म है। हिन्दू धर्म के नियम विज्ञान की कसौटी पर कसे हुए हैं-विज्ञान और प्रकृति सम्मत हैं इस कारण से हिन्दू धर्म ही विश्व का महान वैज्ञानिक धर्म भी कहलाता है। सम्पूर्ण विश्व को इसने ज्ञान-विज्ञान और संस्कार दिया। इसलिए हिन्दूधर्म ही विश्व के सभी धर्मों का जन्म दाता गुरुधर्म है। अत: भारत भूमि (हिन्दूभूमि) जगत गुरु के रुप में विख्यात हुई।

4. हम हिंदुओं ने सब की चिंता की। हमने अंहिसा परमोधर्म को अपनाया । हमने वसुधैव कुटुंबकम को सार्थक किया, हमने सर्वे भवन्तु सुखिन: कहा, हमने चींटियों-मछलियों की भी चिंता की और उन्हें आटा खिलाते हैं। हमने विषधर सर्पों की भी चिंता की, नाग पंचमी को हम उन्हें दूध पिलाते हैं। हमने पशुओं-पक्षियों की भी चिंता की। हमने उन्हें गौधन कहा-गौमाता कहा। हम पक्षियों को भी अन्न के दाने खिलाते हैं। 'गौ' के लिए अपने भोजन की पहली रोटी निकालते हैं। भोजन करते समय कीट-पतंगों के लिए रोटी का पहला निवाला भी निकाल कर रखते हैं। हम कौवों को और कुत्तों को भी श्राद्ध समय पर पहले अन्न खिलाते हैं। हम मोर को अपना राष्ट्रीय पक्षी मानते हैं। हम सर्वाधिक ऑक्सीजन देने वाले वृक्ष पीपल को भी मान्यता प्रदान करते हैं। हम एंटीवायरल पौधा तुलसी को भी पूजते हैं। हम कैल्शियम व विटामिन 'सी' देने वाले आंवले की भी पूजा करते हैं। पवित्र जल वाली गंगा नदी को भी हम माँ का दर्जा देते हैं। दुनिया में जो कुछ भी मानव जाति के कल्याण के लिए है उसको बनाये रखना ही हमारा धर्म है। हम हिंदुओं ने पर्यावरण विशुद्धता और संरक्षण को ध्यान में रखकर जो नियम बनाये उनका सार तत्व ही हिन्दू का हिंदुत्व है।

5. हमारे देश की भारतीय संस्कृति अथवा हिन्दू संस्कृति में संस्कारों का बड़ा महत्व है। स्वामी जी ने नारी के लिए सम्वर्धनी शब्द का प्रयोग किया। सं का अर्थ है संस्कार और वर्धन का अर्थ है-बढ़ाना। भारतीय नारी संस्कारों का वर्धन करने वाली है इसलिए उसे महिला सम्वर्धनी कहा गया। नारी का रूप माँ, पत्नि, बहन, चाची, ताई, बुआ, दादी आदि में प्रकट होता है। जिस देश की नारी संस्कारित है उस देश का प्रत्येक नागरिक संस्कारक्षम होगा। हमारे देश में नारी जीवन के अनेक उत्कृष्ट उदाहरण हैं- गार्गी, सीता, उर्मिला, अनसुइया, चेनम्मा, द्रोपदी, दुर्गावती, मीरा, यशोदा, राधा, रुकमणी, कुंती, जीजाबाई, लक्ष्मीबाई केलकर, मदालसा आदि अनेक नाम लिए जा सकते हैं। यदि नारी शिक्षित, गुणसम्पन्न और संस्कारित होगी तो वह परिवार में अपने बच्चों को, पति को और परिवार के अन्य सदस्यों को संस्कारित कर सकती है। आज संस्कारों की कमी के ही कारण देश में अनेक प्रकार की समस्याएं खड़ी है। हम सभी अपने-अपने पर्यावरण में इन्हें महसूस करते हैं और देखते भी हैं। भ्रष्टाचार का ही एक उदाहरण ले-परिवार में पति या पुत्र यदि नौकरी करता है तो उसके वेतन की जानकारी महिला को प्राय: होती ही है जब अपने जन्म दिवस पर, विवाह की वर्षगाँठ पर या करवा चौथ पर पति महोदय अपनी स्त्री के लिए भेंट स्वरुप स्वर्ण आभूषण या अन्य कीमती सामान लाता है तो वह बहुत खुश होती है। वह यह नहीं सोचती कि मुझे खुश करने के लिए मेरे पति ने रिश्वत ली है- भ्रष्टाचार में लिप्त है, वह उस उपहार को फेंक क्यों नहीं देती, जबकि

उसको पता है कि मेरे पति का वेतन इतना नहीं है जो मुझे वर्ष भर में इतने उपहार दिला सके, यदि महिला संस्कारित होती उस में थोड़ा भी राष्ट्र-प्रेम होता तो वह अपने घर में अपने पति और पुत्र को गलत तरीके से धन-संग्रह करने से रोक सकती थी। भ्रष्टाचार के पीछे अदृश्य रूप से कहीं न कहीं नारी का भी योगदान है । इसलिए स्वामी विवेकानंद ने और स्वामी दयानंद सरस्वती ने इतने वर्षों पूर्व नारी की शिक्षा और संस्कार पर बल दिया था। वह भी समय था जब नारियां शिक्षित नहीं थी, लेकिन उन में संस्कार था, वह अपने परिवार में ऐसा गलत होने नहीं देती थीं। ईमानदारी की कमाई से हम जियेंगे, यह संस्कार देने की क्षमता भारत की नारी में है।

6. स्वामी विवेकानंद ने अपने देश की तात्कालिक दुर्दशा को अपने प्रवास में देखा और समझा। उसका निदान भी बताया इसलिए उन्होने एक वाक्य का घोष किया- ''नर सेवा नारायण सेवा''। भारत की भूमि पर सात समुन्दर पार करके ईसाई पादरी -मिशनरी आ रहे है और वनवासियों, गिरिवासियों, दलितों, पिछड़ों, मैले-कुचैले लोगों के बीच में सेवा के कार्य कर रहें हैं। हम हिन्दू इतने असंवेदनशील हो गये हैं कि उनकी दुर्दशा देखकर हृदय द्रवित नहीं होता। अस्पृश्यता को उन्होंने भारतीय समाज पर सबसे बड़ा कलंक माना, उसे सबसे बड़ा पाप कहा। ईसाई मिशनरियों की सेवा के पीछे धर्मान्तरण करना मुख्य उद्देश्य है लेकिन हम हिन्दू अपने लोगों की सेवा क्यों नहीं कर पाते। स्वामी विवेकानंद के उद्घोष से प्रेरणा लेकर आज बहुत सी संस्थाएं इन क्षेत्रों में सेवा कार्यों में लगी हैं उनमें सेवा भारती संस्था का बहुत बड़ा योगदान है नि:स्वार्थ भाव से ऐसे लोगों की शिक्षा, चिकित्सा, सामाजिक-आर्थिक सेवा से उनका संस्कारक्षम उत्थान करना ही नारायण सेवा है।

7. अंत में स्वामी विवेकानंद ने यह संकल्प लिया था कि अब मैं विदेशों में प्रवास नहीं करूंगा, केवल अपने राष्ट्र की सेवा में जीवन-समय लगाऊंगा। अपने राष्ट्र के लोगों में चारों ओर अन्धविश्वास व्याप्त है। कोई देश के विषय में, अपने प्राचीन राष्ट्र के विषय में सोच नहीं रहा, कुछ करेगा तो क्या? इसलिए स्वामी जी ने कहा -''उठो, जागो और लक्ष्य को प्राप्त करो।'' हे भारत माँ की संतानों, माँ तुम्हें निहार रही है, उसे दासता से, गरीबी से, अशिक्षा से और स्वार्थपरता से मुक्त कराओं। इसलिए सभी देवी-देवताओं को छोड़कर केवल भारत माता का ध्यान करो। यह संकल्प और आह्वान स्वामी विवेकानंद ने भारत की संतानों के सामने रखा, इससे ही भारत का उद्धार होने वाला है- ''सब देवो को छोड़ आज फिर राष्ट्र देव का ध्यान धरें। अपना तन-मन, अपना जीवन इस वेदी पर दान करें।'' ऐसा कहते-कहते स्वामी विवेकानंद ने 4 जुलाई 1902 शुक्रवार रात्रि 9 बजकर 10 मिनट पर बेलूरमठ में महासमाधि ले ली। हम भारतवासी स्वामी जी के उपरोक्त सात कार्यों और सिद्धांतों को पूर्ण कर सके, यही हमारी उनकी सार्धशती जयंती पर सार्थक श्रद्धांजलि हो सकेगी।

✍ **लेखक दिल्ली प्रशासन में भूगोल के प्रवक्ता एवं स्वतंत्र पत्रकार हैं।**

****

आज की पत्रकारिता को विवेक+आनंद की जरूरत

✍ दिनेश कुमार

एक अद्भुत संप्रेषण कला जिसने पूरी दुनिया का सकारात्मक ऊर्जा से झंकृत किया और आज भी कर रही है। स्वामी विवेकानंद जिन्होंने केवल एक संदेश का संप्रेषण ही नहीं किया अपितु अपनी ऑडियंस को उसके दिव्य आनंद का अहसास भी करवाया। संदेश का संप्रेषण आज भी बहुत हो रहा है, लेकिन क्या उतने प्रभावी ढंग से यह हो रहा है, जितना करीब 120 साल पहले बिना आज जितनी प्रभावी तकनीकों के संभव हो पाया। चिंता और शोध का विषय यह है कि आखिर क्यों तकनीकों के विकास के बावजूद संदेश निष्प्रभावी होता गया।

आज पत्रकारिता जगत पर समाज को दिशा देने की महत्ती जिम्मेदारी है। हालांकि बदलते परिवेश में लोग मीडिया से कोई दिशा इत्यादि लेने की बजाय उसका उपयोग सिर्फ सूचना एवं जानकारियां प्राप्त करने के लिए करने लगे हैं। यह हमारे समाज के निरंतर हो रहे बौद्धिक विकास की ओर भी इंगित करता है, जो काफी हद तक अच्छा माना जा सकता है। इसके साथ ही इस तथ्य को भी नकारा नहीं जा सकता कि जनमानस के बढ़ते बौद्धिक स्तर के लिए दिन रात मिल रही सूचनाओं का अथाह प्रवाह भी प्रभावी कारण है। विभिन्न प्रारूपों में मीडिया के अलग-अलग संसाधनों से आज हम जो सूचनाएं प्राप्त कर रहे हैं, वे निश्चित रूप से जनमानस को प्रभावित कर रही हैं और कई बार उद्वेलित भी। बीते वर्षों में अनेक ऐसे उदाहरण सामने आए हैं जो साबित करते हैं बड़े आंदोलनों में सूचना बड़ा शस्त्र साबित होती है। इसलिए सूचनाओं और खबरों का संप्रेषण करने वालों की जिम्मेदारी कहीं अधिक बढ़ जाती है।

इस महत्ती जिम्मेदारी का निवर्हन करने के लिए स्वामी विवेकानंद से बड़ा आदर्श शायद ही कोई और हो। आज से करीब 11 वर्ष पहले मैंने उनकी एक पुस्तक 'राजयोग' पढ़ी। उसके करीब दो साल बाद पत्रकारिता से जुड़ा। नौ साल की पत्रकारिता के दौरान जितना इस क्षेत्र को समझ सका उससे इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि यहां काम करने वाले साथी यदि आंशिक तौर पर भी स्वामी जी के साथ जुड़ जाए तो न केवल उनका कार्य आसान होगा, अपितु देश-समाज का भी बहुत भला हो सकता है।

स्वामी जी की 'राजयोग' पुस्तक दरअसल महर्षि पतंजलि के योग सूत्रों का भाष्य है। इसमें व्यक्तित्व विकास की जो संकल्पना की गई है वह श्रेष्ठतम मनुष्य की है। ऐसा मनुष्य जो शारीरिक, बौद्धिक रूप से कहीं श्रेष्ठ होने के साथ-साथ अनेक चारित्रिक विशेषताओं का धनी हो। पुस्तक के अधिकतम भाग में मन की रचना, उसकी शक्तियां और शक्तियों के विकास की तरकीबें बताई गई हैं। बौद्धिक प्रखरता बढ़ाने के लिए मन की शक्तियों का उपयोग करने की अनेक विधियों का वर्णन महर्षि पतंजलि के योगसूत्रों के आधार पर स्वामी विवेकानंद ने किया है। आज के पत्रकारों के लिए बौद्धिक विकास ही प्रमुख चुनौती है। खेद के साथ कहना पड़ रहा हैं कि अधिकतर साथी इसी कमी की वजह से कोई खास मुकाम हासिल नहीं कर पाते।

जहां तक अखबारी कामकाज के बारे में जाना-समझा है, उसके आधार पर कह सकता हूं कि न्यूज रूम

का यदि कोई व्यक्ति स्वामी जी के आदर्शों को आंशिक रूप से ही आत्मसात कर लें तो उसके कार्य में चमत्कारी रूप से गुणात्मक परिवर्तन आएगा। दरअसल 'राजयोग' का पूरा विज्ञान हमारी मानसिक शक्तियों के विकास की तरकीब बता रहा है, जो हमारे दैनिक कामकाज में अत्यन्त सहायक साबित होगा।

लेकिन क्या सिर्फ बौद्धिक रूप से कहीं अधिक सक्षम बनकर हम अच्छे पत्रकार बन सकते हैं। आज अनेक साथी बौद्धिक कौशल के आधार पर कहीं ज्यादा काम कर रहे हैं, लेकिन उस काम का उनके पाठकों या दर्शकों पर उतना असर नहीं होता जितना होना चाहिए। इसके लिए मैं कहना चाहूंगा कि पत्रकारिता सिर्फ रोजी रोटी कमाने का जरिया भर नहीं है, अपितु यह हमारी सामाजिक और राष्ट्रहित संबंधी जिम्मेदारियों के निर्वहन का एक मंच हैं। इसलिए यह मानकर चलना चाहिए कि जो हम लिखते हैं वह समाज को सकारात्मक दिशा देने वाला हो। दिशा तभी देगा जब उसकी स्वीकार्यता होगी। सिर्फ बौद्धिक या तार्किक आधार पर किसी बात को कोई स्वीकार कर लेगा, ऐसा हम नहीं मान सकते। शिकागो में 1893 के भाषण के दौरान स्वामी विवेकानंद से पहले चार वक्ता 'माई ब्रदर एंड सिस्टर' जुमले का प्रयोग कर चुके थे, लेकिन जैसे ही स्वामी जी ने 'माई ब्रदर एंड सिस्टर' शब्दों से संबोधन शुरू तो पूरा सभागार तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठा। वहां मौजूद हर प्रतिभागी एक विशेष प्रकार की आत्मीयता और आध्यात्मिकता का अनुभव कर रहा था। सभागार में दिव्य तरंगें सी दौड़ रही थीं। आखिर इन शब्दों का प्रयोग तो पहले के चार वक्ता भी कर चुके थे, लेकिन तब तो ऐसा जादू नहीं हुआ, जैसा स्वामी जी के बोलने से हुआ। दरअसल अंतर शब्दों का नहीं बल्कि आचरण का था। कोई भी संदेश वाहक स्वयं कैसा है, इसका असर उसकी ऑडियंस पर पड़ता है। हम बातें अच्छी करते रहे और खुद का आचरण वैसा नहीं हो तो वह बातें सिर्फ कागज रंगने या टीवी के समय के बर्बादी के अलावा कुछ नहीं होगी। बिना ठीक आचरण के बड़ी बातें करने वालों का हश्र ऐसा ही होगा जैसा तरुण तेजपाल का हुआ है।

पत्रकारिता को नकारात्मक प्रवृति से बचाना भी आज बड़ी चुनौती बन गई है। आज एक छोटी सी नकारात्मक घटना पर व्यक्ति विशेष को जनता की नजरों में इतना गिराने का प्रयास किया जाता है कि वह कभी दोबारा उठ ही न सके। हाल ही में पुडुचेरी की एक अदालत ने कांची मठ के शंकराचार्य स्वामी जयेंद्र सरस्वती को बाइज्जत बरी किया है। याद करें 2004 का वह दौर जब मीडिया में शंकररमण हत्याकांड के बहाने हिंदू धर्म की शीर्ष संस्था पर किस प्रकार कीचड़ उछाला था। संत आसाराम के मामले में भी कुछ अतिरेकता सामने आई। स्वामी विवेकानंद जी का इस मामले में स्पष्ट मंतव्य रहा है। उन्होंने मूर्तिभंजकों के बीच मूर्तिपूजा की बात कही है। उनका मानना था कि हम किसी का चरित्र हनन करने की बजाय अपना दिमाग और शक्तियों का प्रयोग सकरात्मक चीजों के प्रचार प्रसार में लगाएं।

एक सद् विप्रा बहुधा वदंति :

आज के कुछ बुद्धिजीवी सिर्फ स्वयं को ही सर्वश्रेष्ठ मानने की प्रवृति से ग्रसित हैं। यह प्रवृति कट्टरता को जन्म देती है, जो आगे चल कर वैश्विक अशांति का कारण भी बनती है। स्वामी विवेकानंद ने सभी के विचारों का आदर करने और भिन्न मत वालों की बातों में भी ग्राह्य अंश ढूंढने की प्रवृति पर जोर दिया। उन्होंने हर

विषय पर अपना स्पष्ट मंतव्य दिया, लेकिन कभी भी दूसरों के मत के प्रति प्रतिशोध का भाव नहीं रखा। धर्म और मानवता को लेकर उन्होंने एक जगह लिखा है –

''समस्त संसार में तुम किसी न किसी रूप में मूर्तिपूजा पाओगे। कहीं वह मूर्ति मनुष्याकार है, जो कि उसका सर्वोत्तम रूप है। यदि मैं किसी मूर्ति की उपासना करना चाहूं, तो मैं उसका मानव रूप पसंद करूंगा, न कि पशु, भवन या अन्य कोई रूप। एक संप्रदाय सोचता है कि एक विशिष्ट रूप ही मूर्ति का सही प्रकार है, अन्य सोचता है कि वह रूप खराब है। ईसाई सोचते हैं कि यदि ईश्वर 'कबूतर' के रूप में आए तो ठीक, किन्तु यदि वह मत्स्यावतार लेकर आए, जैसा कि हिंदुओं की धारणा है तो वह झूठ हैं, निरा अंधविश्वास है। यहूदियों की धारणा है कि यदि मूर्ति का रूप ऐसा हो जिसमें 'एक संदूक पर बैठे हुए दो देवदूत और एक पुस्तक' दिखाई जाए, तो वह बिल्कुल ठीक होगा, किन्तु यदि मूर्ति स्त्री या पुरुष रूप में है, तो वह भयानक है। मुसलमानों का विश्वास है कि नमाज़ पढ़ते समय यदि वे पश्चिम की ओर मुंह कर काबा की मस्जिद और उसके पवित्र 'संगे असवद' (काला पत्थर) का कल्पना-चित्र अपने मस्तिष्क में ला सकें तो वह बहुत अच्छा रहेगा। किन्तु यदि उस कल्पना-चित्र में गिरजाघर जा जाए तो वह घोर मूर्तिपूजा। यही दोष है, किंतु धर्म के साक्षात्कार की यह आवश्यक सीढ़ियां हैं।''

इन अंशों को यहां उद्धृत करने का उद्देश्य यह बताना है कि स्वामी जी बिना किसी की बातों या सिद्धांतों का खण्डन किए बिना अपनी बात सहजता और प्रभावी ढंग से रखते थे। दूसरी खास बात यह कि इसके पीछे किसी का भी अहित करना उनका उद्देश्य नहीं होता था, अपितु सभी की भलाई का भाव निहित रहता था। ऐसे विचारक, वक्ता, संदेश वाहक, प्रचारक निश्चित रूप से आज के संदेश वाहकों के लिए आदर्श होने ही चाहिए, ताकि संदेशों और सूचना का प्रवाह सकारात्मक एवं प्रभावी ढंग से सबके मंगल का कारण बन सके।

✍ **लेखक अमर उजाला के वरिष्ठ उपसंपादक हैं।**

****

स्वामी विवेकानन्द और उनका शिक्षा दर्शन

पाश्चात्य के लिए हिन्दू धर्म के अलावा कोई मार्ग नहीं

✍ अनिल सौमित्र

दुनिया में भारत एक अलग, भिन्न प्रकार का देश क्यों है?क्या सिर्फ मानचित्र या भौगोलिक भिन्नता ही, भारत को दुनिया में विशिष्ट बनाता है, या कुछ और बात है? क्या सच में दुनिया के देश भोग भूमि हैं और भारत योग और कर्म की भूमि? राष्ट्रवादी तो भारत को देवभूमि और पुण्यभूमि तक कहते हैं। भारतीय सभ्यता प्रकृति केन्द्रित रही है, यूरोप और पश्चिमी सभ्यता मानव केन्द्रित। यूरोप सहित पश्चिमी देशों का विकास औद्योगिकीकरण, व्यापार, वाणिज्य, उत्पादन, विपणन और प्रौद्योगिकी के आधार पर हुआ है। किन्तु भारतीय सभ्यता का विकास धर्म–आध्यात्म और सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर। पश्चिमी देश दुनिया में साम्राज्य विस्तार करते और गुलामों की फौज बढ़ाते रहे। प्राचीन भारत में गुलाम प्रथा कहीं नहीं दिखाई देती। यहां मानवता के प्रति सम्मान प्रारंभ से ही रहा है। हिंसा, बल और लोभ के द्वारा मतान्तरण ईसाई देश अपनी जिम्मेदारी मानते रहे हैं। भारत से सृजित धर्म अनेक देशों में फैले, लेकिन शांतिपूर्ण प्रचार–प्रसार के द्वारा। भारत को दुनिया से, खासकर यूरोप से अलग बताते हुए स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि – 'भारत की वायु शान्तिप्रधान है, यवनों की प्रकृति शक्तिप्रधानय एक गंभीर चिन्तनशील है, दूसरा अदम्य कार्यशीलय एक का मूलमन्त्र है 'त्याग', दूसरे का 'भोग'य एक की सब चेष्टाएं अन्तर्मुखी हैं, दूसरे की बहिर्मुखीय एक की प्रायः सब विद्याएं आध्यात्मिक हैं, दूसरे की आधिभौतिकय एक मोक्ष का अभिलाषी है, दूसरा स्वाधीनता को प्यार करता हैय एक इस संसार के सुख प्राप्त करने में निरुत्साह है, और दूसरा इसी पृथ्वी को स्वर्ग बनाने में सचेष्ट हैय एक नित्य सुख की आशा में इस लोक के अनित्य सुख की उपेक्षा करता है, दूसरा नित्य सुख में शंका करके अथवा उसको दूर जानकर यथासंभव ऐहिक सुख प्राप्त करने में उद्यत रहता है।'(विवेकानन्द, 1997)

हालांकि स्वामी विवेकानन्द ने किसी नये सिद्धान्त या दर्शन का प्रतिपादन तो नहीं किया और न ही भारतीय समाज के लिए किसी वैकल्पिक संरचनात्मक प्रारूप का विकास ही किया, किन्तु दुनिया में हिन्दू धर्म और संस्कृति की प्रबल पैरोकारी जरूर की। वे दोहरा काम करते रहे। एक तरफ वे विश्व में भारत की धर्म पताका फहराते रहे, वहीं दूसरी ओर भारत के लोगों, समाज और धर्म का परिष्कार भी करते रहे। काल प्रवाह के साथ हिन्दू धर्म में आई बुराइयों से वे जीवनपर्यन्त संघर्ष करते रहे। स्वतंत्रता और समानता की अवधारणा पर आज यूरोपीय मुलम्मा जरूर चढ़ गया है, लेकिन विवेकानन्द ने उपनिषद् के दर्शन – ''ईशावास्यं इदं सर्वम यत्किंच जगत्यांजगत'' की प्रस्थापना का हवाला बार–बार देते हुए पश्चिम को स्वतंत्रता, समानता और एकता के सूत्र समझाते रहे। भारत में भ्रमण करते हुए उन्होंने बार–बार सामाजिक और धार्मिक बुराइयों का उल्लेख किया, लेकिन शिकागो सहित अपने तमाम भाषणों में वे इस्लाम और ईसाइयत को चुनौती देते हुए हिन्दू धर्म से सीख लेने का आह्वान करते रहे। भारतीयों को आह्वान करते हुए विवेकानन्द ने कहा– हमारे धर्म का यूरोप और अमेरिका में प्रचार होना चाहिए। आधुनिक विज्ञान ने ईसाई आदि धर्मों की भित्ति बिलकुल चूर–चूर कर दी है। इसके सिवाय, विलासिता ने तो धर्मवृत्ति का प्रायः नाश ही कर डाला है। यूरोप और अमेरिका आशा भरी दृष्टि से भारत की ओर ताक रहे हैं। परोपकार का

यही ठीक समय है, शत्रु के किले पर अधिकर जमाने का यही उत्तम समय है। पश्चिमी देशों में नारियों का ही राज, नारियों का ही बल और नारियों की ही प्रभुता है। यदि वेदान्त जानने वाली तेजस्विनी और विदुषी महिलाएं प्रचार के लिए इंग्लैण्ड जाएं, तो मैं निश्चित कहता हूं कि प्रत्येक वर्ष सैकड़ों स्त्री–पुरूष भारतीय धर्म ग्रहण कर कृतार्थ हो जायेंगे। अकेली रमाबाई ही हमारे यहां से गयी थीं, अंग्रेजी भाषा, पश्चिमी विज्ञान और शिल्प आदि में उनका ज्ञान बहुत ही कम था, तो भी उन्होंने सबको चकरा दिया। यदि आप जैसी कोई पधारें तो इंग्लैण्ड हिल जायेगा, फिर अमेरिका की क्या बात है! स्वामी विवेकानन्द ने कहा कि मैं दिव्य दृष्टि से देख रहा हूं कि यदि भारतीय नारियां देशी पोशाक पहने भारत के ऋषियों के मुँह से निकले हुए धर्म का प्रचार करें, तो एक ऐसी बड़ी तरंग उठेगी, जो सारी पश्चिमी भूमि को डुबो देगी। क्या मैत्रेयी, खना, लीलावती, सावित्री और उभयाभारती की इस जन्मभूमि में किसी और नारी को यह साहस नहीं होगा?प्रभु ही जानें! इंग्लैण्ड पर हम लोग धर्म के बल से अधिकार करेंगे, उसे जीत लेंगे – ''नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'' – इसे छोड़ और कोई दूसरा मार्ग ही नहीं। क्या कभी सभा–समितियों के द्वारा इस प्रतापी असुर का उद्धार हो सकता है?अपनी आध्यात्मिकता के बल पर हमें अपने विजेताओं को देवता बनाना होगा। इंग्लैण्ड, यूरोप और अमेरिका पर विजय पाना– अभी यही हमारा महामन्त्र होना चाहिए। इसी से देश का भला होगा। विस्तार ही जीवन का चिन्ह है, ओर हमें सारी दुनिया में अपने आध्यात्मिक आदर्शों का प्रचार करना होगा।(विवेकानन्द, 1997)

दरअसल स्वामी विवेकानन्द एक तरफ तो पाश्चात्य के गुणों का अनुकूलन कर भारत को सशक्त और समृद्ध करना चाहते थे, वहीं प्राच्य की सीख पाश्चात्य को भी देना चाहते थे। कहना न होगा कि पश्चिमी शिक्षा और संस्कृति का विवेकानन्द पर गहरा प्रभाव था। स्वामीजी के दृष्टिकोण में तर्कवाद और प्रगतिशीलता का एक बड़ा कारण पाश्चात्य चिंतन का प्रभाव था। उनमें एक तरफ जहां आध्यात्मिकता के प्रति जन्मजात प्रवृत्ति तथा प्राचीन धार्मिक प्रथाओं के प्रति आदर था, वहीं दूसरी ओर उनका प्रखर बुद्धियुक्त तार्किक स्वभाव था। बहुत समय तक विवेकानन्द के भीतर दोनों विचारों के बीच संघर्ष चलता रहा। बाद में स्वामी जी ने भारतीय और पाश्चात्य अर्थात् आध्यात्मिक और तार्किक विचारों में सामंजस्य का मार्ग विकसित किया। वे विश्वबन्धुत्व के वाहक बने। उनकी प्रेरणा और प्रयासों से अमेरिका में वेदान्त समिति की स्थापना हुई, थाउजैन्ड आइलैण्ड पार्क में अनेक अन्तरंग शिष्यों का मण्डल तैयार हुआ, राजयोग ग्रन्थ की रचना हुई। इंग्लैण्ड में अनेक व्यक्तियों ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। हालांकि विश्व के समस्त धर्मों के आधारभूत वेदान्त के संदेश को पश्चिम में पहुँचाने में स्वामीजी का काफी समय और श्रम लगा, लेकिन भारत और दुनिया को उसका लाभ आज स्पष्ट दिख रहा है। संयुक्त राष्ट्र अमरिका में वेदान्त प्रचार कार्य को स्थायी आधार मिल गया। लन्दन में वेदान्त प्रचार के लिए अनुकूल वातावरण तैयार हुआ। स्वामी जी की यह धारणा दृढ़तर होती गई कि प्राच्य तथा प्राश्चात्य दोनों को पारस्परिक सहायता करनी चाहिए तथा दोनों में सहकारिता की वृद्धि होना जरूरी है। पाश्चात्य की भौतिक चमक–दमक उन्हें चकाचौंध नहीं कर सकी, लेकिन वे पश्चिम की इस चमक–दमक का उपयोग भारत की सामाजिक तथा आर्थिक निर्बलताओं को दूर करने में करना चाहते थे। भगिनी निवेदिता से उन्होंने एक बार कहा था– ''पाश्चात्य में सामाजिक जीवन ब्राह्य उल्लास का ढेरमात्र है, किन्तु उसके नीचे छिपा है भीषण रुदन, उसकी समाप्ति होती है सिसकियों में ... और यहां भारतवर्ष में बाह्यतः दुःख और क्षोभ है, किन्तु अन्तस्तल में है ब्रेफ्रिकरी और आनन्द। पाश्चात्य ने बाह्य जगत् पर विजय प्राप्त करने का प्रयास किया, भारत ने अन्तर्जगत् पर। अब

श्रेयस्कर यह है कि प्राच्य और पाश्चात्य दोनों हाथ में हाथ डालकर एक–दूसरे के हितसाधन में लगे, किन्तु इतना अवश्य है कि बिना एक दूसरे के वैशिष्ट को नष्ट किये। पाश्चात्य को प्राच्य से बहुत कुछ सीखना है और इसी प्रकार प्राच्य को पाश्चात्य से। असल में भविष्य गढ़ा जाये दोनों आदर्शों के समुचित सामंजस्य से। तब न प्राच्य रहेगा न पाश्चात्य, बल्कि रहेगी एकमात्र मानवता।'' (स्वामी विवेकानन्द, 1997)।

भारतीयों को संबोधित करते हुए स्वामीजी ने कहा था – पाश्चात्य जातियों से हम थोड़ा–बहुत सीख सकते हैं कि भोग में किस प्रकार सफलता मिल सकती है। किन्तु यह शिक्षा ग्रहण करते समय हमें बहुत सावधान रहना होगा। मुझे बड़े दुःख से कहना पड़ता है कि आजकल हम पाश्चात्य शिक्षा में शिक्षित जितने लोगों को देखते हैं, उनमें से एक का भी जीवन आशाप्रद नहीं है। इस समय हमारी एक ओर प्राचीन हिन्दू समाज और दूसरी ओर अर्वाचीन यूरोपीय सभ्यता है। इन दोनों में यदि कोई मुझसे एक को पसन्द करने के लिए कहे, तो मैं प्राचीन हिन्दू समाज को ही पसन्द करूंगा, क्योंकि अज्ञ होने पर भी, कुसंस्कार के घिरे होने पर भी, हिन्दू के हृदय में एक विश्वास है – उसी विश्वास के बल पर वह अपने पैरों पर खड़ा हो सकता है। भारत में रजोगुण का प्रायः सर्वथा अभाव ही है। इसी प्रकार पाश्चात्य में सत्वगुण का अभाव है। इसीलिए यह निश्चित है कि भारत से बही हुई सतवधारा के ऊपर पाश्चात्य जगत् जीवन का जीवन निर्भर रहता है, और यह भी निश्चित है कि तमोगुण को रजोगुण के प्रवाह से बिना दबाये हमारा ऐहिक कल्याण नहीं होगा और बहुधा पारलौकिक कल्याण में भी विघ्न उपस्थित होंगे। हमको अपने घर की सम्पत्ति सर्वदा सम्मुख रखनी होगी... और फिर संसार के चारों ओर से प्रकाश की किरणें आयें, पाश्चात्य का तीव्र प्रकाश भी आये! जो वीर्यवान है, बलप्रद है, वह अविनाशी है, उसका नाश कौन कर सकता है?

विवेकानन्द ने अपने संदेश में हमेशा इस बात पर जोर दिया कि राष्ट्रीय जीवन मूल्य का आधार धर्म है–एक ऐसा धर्म जो समस्त विश्व के आध्यात्मिक ऐक्य का प्रचार करे और जब वह प्राप्त हो जाएगा तब हर चीज स्वतः सिद्ध अपने आप सुधर जायेगी। अपने देशवासियों की पाश्चात्य के प्रति अन्ध–अनुकरण–वृत्ति की भी उन्होंने तीव्र आलोचना की और इसी प्रकार लोगों की रूढ़िवादिता, जातिसंकीर्णता आदि आदि की भी। हिन्दू धर्म में वर्षों से हो रहे क्षरण के बावजूद ईसाइयत और इस्लाम के बरक्श हिन्दू श्रेष्ठता को स्थापित करने का उन्होंने सफल प्रयास किया। विवेकानन्द मूलतः एक धार्मिक व्यक्ति थे। दुनिया में उनकी ख्याति भी एक धार्मिक परिव्राजक के रूप में हुई। वे भारतीय धर्म–तत्व के व्याख्याकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। यह महज संयोग नहीं है कि यूरोप और अमेरिका को अब ईसाई और इस्लामिक दृष्टि के अतिरिक्त एक सर्वथा नई दृष्टि– 'हिन्दू दृष्टि' मिली है। अब वे स्वयं को हिन्दू दृष्टि से देखने लगे हैं। यूरोप और अमेरिका के विद्वान भारतीय दर्शन, चिंतन और तात्विक विवेचनाओं में अब पहले से अधिक रूचि ले रहे हैं, शायद भारतीय विद्वानों से भी अधिक। अमेरिका पुनः अपनी खोज में, अपनी पुनरन्वेषणा में लगा है, वह भी हिन्दू रीति–नीति से।

अनेक पश्चिमी देशों में अपनी प्राचीन श्रेष्ठताओं का तलाशने और गर्व की अनुभूति का दौर शुरू हो चुका है। वे अब देख पाने की चेष्टा कर रहे हैं कि उनका पुराना पंथ बहुत गहरा था, उनमें भी आध्यात्मिक गहराई थी। वे अब यह जानने, समझने और मानने लगे हैं कि उनके पुरखे इस बात से इत्तेफाक नहीं रखते थे कि मनुष्य का जन्म पापपूर्ण गर्भ में से ही हुआ है। बल्कि वे मानते थे कि चारों ओर व्याप्त एक महान आत्मा है और उसका महान रहस्य सब ओर व्याप्त है। पश्चिम के अनेक विद्वान अब हिन्दुओं की कही

बातों में अपने प्राचीन चिंतन की समानता देखने लगे हैं। अब वे भी प्रकृति में संतुलन और सामंजस्य के नियम पर आस्थावन होने लगे हैं। बहुत कुछ हिन्दू चिंतन के करीब अपने को देखने, तलाशने की एक कोशिश शुरू हो चुकी है। वे अब हिन्दुओं की – 'सर्वम खलु इदम् ब्रह्म' की धारणा को स्वीकार करने लगे हैं।

स्वामी विवेकानन्द भारत को विश्वगुरू के देखना चाहते थे। वे मानवीयता के श्रेष्ठता के पक्षधर थे। वे चाहते थे कि दुनिया के मानव श्रेष्ठ बनें। इसीलिए वे बार–बार भारत को आर्यावर्त के उद्घोष 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का स्मरण दिलाते रहे। वे इसे सफल होता हुआ देखना चाहते थे। वे यूरोप और भारत दोनों की तत्कालीन स्थिति और भविष्य के प्रति चिंतित थे। कई अवसरों पर स्वामीजी ने भारत और यूरोप–अमेरिका पर अपनी ऐतिहासिक श्रेष्ठताओं को भूलने का आरोप लगाया और प्राचीन गौरव को प्राप्त करने का संकल्प दिलाया। वे अपने भाषण में कहते हैं–'यूरोप तथा अमेरिकावासी तो यवनों की समुन्नत, मुखोज्ज्वलकारी संतान हैं, पर दुःख है कि आधुनिक भारतवासी प्राचीन आर्यकुल के गौरव नहीं रहे। किन्तु राख से ढकी हुई अग्नि के समान इन आधुनिक भारतवासियों में छिपी हुई पैतृक शक्ति अब भी विद्यमान है। यथा समय महाशक्ति की कृपा से उसका पुनः स्फुरण होगा।

भारत जबकि सदियों से विदेशी शासन से ग्रस्त था, यूरोप, इंग्लैण्ड और अमेरिका का वर्चस्व दुनिया में हावी था, ईसाइयत और इस्लाम का दबदबा दुनिया के सिर चढ़कर बोल रहा था। स्वामी विवेकानन्द का प्रयास एक युगान्तकारी पहल थी। बहुत समय बाद भारत लोगों के मन में स्वधर्म का स्वाभिमान जागृत हुआ। आज यूरोपीय देशों, इंग्लैण्ड और अमेरिका में हिन्दू धर्म का जो प्रभाव दिखता है उसकी पृष्ठभूमि में स्वामी विवेकानन्द के प्रयासों को नजरंदाज नहीं किया किया जा सकता। एक समय था जब अत्यन्त शुद्धतावादी विचारों के कारण भारतीय समुद्रपार जाने के खिलाफ थे। प्राचीन भारत में किन्हीं कारणों से समुद्रपार यात्रा के बारे में नकारात्मक या निषेधात्मक धारणाओं का उल्लेख मिलता है। शायद यही कारण रहा कि भारत के सनातन धर्म प्रचार–प्रसार समुद्रपारीय देशों में कम हो सका। प्राचीन हिन्दू समाज आर्यावर्त से बाहर न जा सका। धार्मिक और सांस्कृतिक विस्तार के मामले में हम बहिर्मुखी कम, अन्तर्मुखी ज्यादा रहे। आक्रमण न करना सुरक्षा की गारंटी नहीं होती। भारत धार्मिक व सांस्कृतिक मामलों में भी सदैव सुरक्षात्मक ही रहा, जबकि अन्य सभ्यताएं साम्राज्य की ही दृष्टि से नहीं, अपितु मतों के प्रचार–प्रसार की दृष्टि से भी आक्रामक ही रहीं। किन्तु विवेकानन्द ने उस मिथक को तोड़ने का काम किया। उन्होंने पश्चिम के लोगों पर हिन्दू धर्म की अमिट छाप छोड़ी थी। पहले आचार्य रजनीश, महर्षि महेश योगी और आज आध्यात्मिक गुरू श्री श्री रविशंकर, योग गुरू बाबा रामदेव, इस्कॉन, चैतन्य स्वामी मठ या अन्य आध्यात्मिक व्यक्तियों व संगठनों की जो धाक् पाश्चात्य देशों में दिखाई देती है उसकी पार्श्व भूमि स्वामी विवेकानन्द का व्यक्तित्व और कृतित्व ही है। विवेकानन्द ने हिन्दू धर्म की सरल और स्वीकार्य व्याख्या की। दुनिया में हिन्दू धर्म को प्रतिष्ठित किया। आज राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ दुनिया के अनेक देशों में हिन्दू धर्म की पताका फहरा रहा है तो इसके पीछे भी स्वामीजी के योगदान को श्रेय दिया जाना चाहिए। उल्लेखनीय बात यह है कि यूरोप, इंग्लैण्ड और अमेरिका जैसे शक्तिशाली देशों में गरीब, निर्धन या लाचार हिन्दू धर्म के प्रति आकर्षित नहीं हो रहे, बल्कि वहां का अभिजात्य, सम्पन्न और बुद्धिजीवी हिन्दू धर्म स्वीकार कर रहा है। कुछ वर्ष पूर्व हॉलीवुड अभिनेत्री जुलिया राबर्ट्स ने हिन्दू धर्म स्वीकार किया। इसी प्रकार अमेरिका के विद्वान डेविड फ्रॉली ने हिन्दू धर्म अपना लिया। अब वे वामनदेव शास्त्री हो गये हैं। वे दुनिया में वैदिक परम्परा के प्रमुख बुद्धिजीवी

माने जाते हैं। वामदेव शास्त्री अमेरिका में 'अमेरिकन वैदिक इन्सट्टीयूट' का संचालन करते हैं। ऐसे एक नहीं अनेक उदाहरण हैं। अमेरिकी समाज हिन्दू धर्म को सनातन जीवन पद्धति से जोड़कर देखने लगा है। विवेकानन्द पहले भारतीय थे जिन्होंने अमेरिका को पहली बार हिन्दू धर्म से प्रत्यक्ष अवगत कराया। हालांकि इसके काफी पहले ही राल्फ वाल्दो इमर्सन ने हिन्दू धर्म का पाठ अमेरिका में किया था। वस्तुतः स्वामी विवेकानन्द ने अमेरिकी धरती पर जिस आध्यात्मिकता की शुरूआत की वह कालान्तर में एक प्रवाह बन गई। यह प्रवाह निरन्तर है। आज सामान्य अमेरिकी भी बड़े पैमाने पर हिन्दू जीवन पद्धति अपना रहा है। अमेरिकी लाग द्रुत गति से उदारमना होते जारहे हैं...और यह महान् राष्ट्र शीघ्रता से उस आध्यात्मिकता की ओर अग्रसर होता जा रहा है, जिसका हिन्दुओं को गौरवपूर्ण अभिमान है।(रंगनाथानन्द, 1985)।

दरअसल विश्व को भारतीय दृष्टि से देखना भी वैश्विक संतुलन एवं ऋत तथा सत्य की दृष्टि से आवश्यक है और यह हमारा स्वधर्म भी है। दुनिया में ईसाई और इस्लाम का विस्तार तो हो रहा है, लेकिन जीवन पद्धति के नाते यह व्यक्तिगत स्तर पर बड़े पैमाने पर अस्वीकृत हो रहा है। इसके विपरीत हिन्दू जीवन पद्धति का दुनिया में तीव्र विस्तार भले न हो रहा हो, लेकिन विभिन्न वर्गों में व्यक्तिगत स्तर पर यह बड़े पैमाने पर स्वीकार्य और ग्राह्य हो रहा है। भले ही व्यक्तिगत या संस्थागत तौर असंगठित प्रयास ही हो रहा हो, लेकिन हिन्दू जीवन पद्धति के प्रचार–प्रसार की निरन्तरता समकालीन वैश्विक संदर्भों में एक बड़ी उपलब्धि है। भारत ही नहीं, दुनिया के विद्वान मानने लगे हैं कि आज की छोटी–बड़ी लगभग सभी समस्याओं का समाधान हिन्दू जीवन पद्धति में है। आवश्यकता है इसे ईमानदारीपूर्वक आजमाने की। भारत के राष्ट्रवादियों द्वारा यह कहा जाना अतिश्योक्तिपूर्ण हो सकता है कि दुनिया की सभी समस्याएं अपने अंतिम चरण में भारत में आती हैं, अपने खात्मे के लिए। इसलिए चाहे वह आर्थिक विकास का प्रारूप हो या सामाजिक–सांस्कृतिक उन्नति का मार्ग, हिन्दू जीवन पद्धति एक सफल प्रयोग सिद्ध हो रहा है। आतंकवाद, कट्टरता, साम्प्रदायिक उन्माद, शोषण, गरीबी, असमानता और युद्ध जैसी अन्तरराष्ट्रीय समस्याओं का समाधान भारतीय या हिन्दू जीवन पद्धति में प्रत्याशित है। क्योंकि 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' दोनों एक ही सिक्के के पहलू हैं, दोनों वैदिक उद्घोषणाएं हैं। इन उद्घोषणाओं का पूर्ण होना, साकार होना विश्व मानवता के लिए शुभ है। यह विश्व सभ्यता के लिए आवश्यक भी है। यह हमारी मानवता के प्रति जिम्मेदारी भी है। स्वामी विवेकानन्द ने अपने दायित्व का निर्वहन बखूबी किया। उनकी प्रेरणाएं हमें उद्वेलित करती हैं कि विश्व मानवता को श्रेष्ठ बनाने के लिए हम अपने गुरुतर दायित्व का निर्वहन करें। स्वामी विवेकानन्द की सार्ध शती वर्ष में हर भारतीय के लिए यह संकल्प का अभिनव अवसर है। संकल्प – 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का।

संदर्भ :

स्वामी विवेकानन्द 1997 हे भारत! उठो! जागो! रामकृष्ण मठ नागपुर

स्वामी विवेकानन्द 1997 हे भारत! उठो! जागो! रामकृष्ण मठ नागपुर

स्वामी रंगनाथानन्द 1985 स्वामी विवेकानन्द का मानवतावाद अद्वैत आश्रम कलकत्ता

रामस्वरूप, 2007 योग की अध्यात्म विद्या एवं सेमेटिक धर्मपंथ प्रो. रामेश्वर मिश्र 'पंकज' (अनूदित एवं संपादित) भोपाल, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी

✍ **लेखक मीडिया एक्टिविस्ट हैं।**

Dharma Based Purpose of Life : Swami Vivekananda's Vision

✍ **Prof. B. K. Kuthiala**

From the times immemmorial humans have been wondering about the meaning of life. Not only the philosophers, scientists and thinkers have pondered over the rationale of human existence even a commoner often tries to find the purpose of human life. Innumerable answers and expalanations have been given. These range from a belief system that the man is born in sin and the lifetime purpose is to somhow get out of the sin to a very candid elaboration that there is no objective of human living other than to enjoy the life by induldging in pleasures of body in all possible ways.

But, it seems, the learned men and women who lived on the land of Bharat thousands of years ago have realized the true meaning of human life. The holisitic knowledge of these learned persons are available in various forms in all the scriptures of this land. Vedas, Upnishadas, Puranas, Epics and others all have an underlying unity of thought about the real purpose of taking birth as a human being. The Bhagavat geeta gives the essence of all these works by stating that the purpose of every human life is to awaken our spiritual consciousness and reconnect with the almighty. It goes one step ahead and warns that this is the end goal for every living entity and human life is our best opportunity.

Ancient Scriptures

Swami Vivekanda had grasped the invaluable philosophies of these scriptures in totality and he spent his short life in communicating this great knowledge to the world in the contemporary language and idiom. His lectures, conversations, writings and letters are a huge storehouse of the ancient Bharatya wisdom. His conceptualization of the purpose of human life and its practical aspects are easy to grasp from these sources.

The core message of Swami Vivekananda was that the human life is a blessing not to be wasted in physical pleasures alone. Its sole purpose is to evolve into a higher spiritual stage. The purpose of life is not to eat, drink and be merry. Man is not homo faber (tool fabricating animal or working man or man the creator) but a homo spiritualis (man not only with body, heart and mind bur also with atman, a creature who wants to know the spirit behind all matter). His emphasis on dharma as the essence of living and adhaytama as the way of life reestablished the core values of Vedanta. Man may be a social animal but the mother nature demands human beings to evolve from Nar to Naryana.

According to Swamiji the purpose of human life is of four fold:

* to discover self

* to pray for the welfare of

entire creation

* to work for the upliftment of the fellow human beings

* to meditate on the universal self within

He visualized the progression of life of a man as the combination of the enrichment of the holistic spirituality of mind with the experimentation of physical sciences. For the evolution of a 'complete man' inside every human being he advocated four ways.

Four Paths

One, the the path of knowledge - learning about the nature's creation including the self. The approach has to be holistic and not compartmentalized into various sectors of education. And this learning process is unending, it has to go on all through the life of an individual. Second, the path of devotion - to the almighty parmatan. Bhakti as advocated in ancient Bharatiya literature is total surrender and commitment to God, gods and goddesses. On the one hand it makes an individual one with the supreme force, yet at another plane Bhakti creates a feeling of being one with the other men and women around. It results in a desire to do good for others. Focus shifts from self-promotion to the collective development of the society because bhakti creates the realization that everyone and everything is connected by common consciousness.

Third, the path of the service of all living gods. Seva (service is not an appropriate word for seva) is the desired karma of every enlightened human being. Preserving, perpetuating and promoting the self is a lower and faulty value system but the interests of the self are inclusive in the welfare of the totality. Daridra (deprived) is the Narayana (god) irrespective of the caste, color, creed, race, gender, age or geographical location. Knowing self through bhakti makes you a compulsive door of good to others. Fourth path propagated by Swamiji is of mediation or dhayana. There are structural and functional similarities between the smallest, an atom and the largest the cosmos - brahmanda. Meditation helps to see the cosmic self within the body. Meditation is connecting the minor force of an individual body and mind with the all pervasive force of the cosmos. Thus, knowing self with devotion to the eternal entity, all deeds committed to the service of mankind and visualization of self in the totality of creation constructs a sure path for the evolvement of man to god or Nar to Narayana. To be born as a human and die only as a man is not the purpose of life, the golden opportunity is to grow spiritually during the life that an individual has been bestowed with.

Four Purusharthas

Swamiji repeatedly emphasized upon the need to combine adahyatama of east with the science of the West. In fact, he was successful in establishing that whatewver discoveries the modern science is

making today are all inherent in the ancient knowledge of the Vedas and the Upanishads. He was proponent of the theory that the ideal way of living a human life is to understand and practice the teachings of the Vedas. The essentiality of the proposed way of life is to meet the basic physical needs of the body and simultaneously work for the needs of the atman.

His philosophy for human living was based upon the four purusharthas-dharma, artha, kama and moksha. Morality, duties and obligations; work and the deeds for material pleasures; desires and needs of the body and attainment of liberation, salvation and renunciation. It is important to understand that Swamiji never propagated salvation without morality, without righteous deeds and also withou fulfilling wordly and bodily desires. His simple formulation was to be actively engaged in worldly affairs but be restricted by the basic duties and obligations just by following the laws of nature. This path brings an individual to a state of mind where worldly affairs cease to attract and the compulsive desire to be one with the almighty overtakes everything else. This achievement of an individual human is the ultimate purpose of life, according to Swami Vivekananda.

Sharing and Coexistence

As against the Western belief system where struggle for existence and survival of the fittest are the fundamental tenets on which human society must perform, Swamiji proved beyond any doubt that for human beings sharing, helping and co-existence create much better social systems. All human beings are not equally bestowed with worldly goods. All are differently enabled physically and intellectually. But all human beings must strive to be equal. To give to those who do not have, to help who are weak, to feed who are hungry, to care for those who are sick is the most righteous and spiritually the most profitable way of life for every human being. Struggle is a tendency that a civilized society must eliminate. The fittest has the greatest obligation to help those who are not fit to live life with dignity. Swamiji preached that it is the dharma of everyone to convert the chandala (the lowest in social heirarchy) into a brahmana (the highest in social heirarchy). It means that the society is obliged to bring all its members to a same degree of economic, social and cultural development. Can there be a better goal for a community?

Searching Truth

Swamiji not only advocated the need for a life based upon dharma but he also, again and again, emphasized on the uniqueness of hindutava. For a true Hindu search for the truth and realization of the ultimate truth are the goals of life. But every Hindu also knows that the truth has many manifestations.

Ekam sad vipra bahudha

vadanti,da ln~foizk cgq/kk onfUr

(The real truth is only one but learned men say it differently)

This is the beautiful diversity of human expression that Swamiji celebrated not only in Bharat but also in America and Europe. Swamiji is found practicing this principle of human communication by explaining many concepts of Vedanta in a number of ways depending upon the intellectual level of the audiences in America, Europe and Bharata. Yet, he has celebrated the underlying unity of diversity as well by explaining every concept according to the basic principles of Vedanta enunciating the commonality of the same conciousness in all, living and non-living.

Celebrating Plurality

Not remaining confined to the plurality of the presentation of only one truth Swamiji also established that the truth can come to you from more than one channels.

Aa no bhadrah kartavo yantu vishwatah

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः

(Let all noble thoughts come to me from all directions)

The seeker of the truth has to be eternally hungry for knowledge and must look for multiple sources. The seeker must also be a welcome receiver of learning from everyone and everywhere. Giving a third dimension to the process of contemplating the truth, at many places Swamiji has quoted from Geeta:

Mam vartmnuvartante manushyah parlh sarvshah

मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः

(All men are struggling through paths which in the end lead to me)

What can be a nobler purpose of life than to search and find the truth that is present in many forms, can be reached in many ways and it can also lead to many ways. This great restatement of Vedanta principle by Swami Vivekananda establishes another guideline for the purpose of life. The rational belief system never says 'me only' because diversity is the law of nature. Singular existance is not a possible option, plurality must be experiences, apreciated and celebrated in thought and action. Life would become so pleasant and livable if there is an universal acceptance of 'me also' principle. Perhaps this is what Swamiji was hinting at in the last sentence of his famous Chicago address at the Parliament of the World's Religions, Chicago in 1893 where he hoped "bell that tolled this morning in honour of this convention may be the death-knell of all fanaticism, of all persecutions with the sword or with the pen, and of all uncharitable feelings between persons wending their way to the same goal".

In short the purpose of goal is the realization of fundamental truth about

the self. Three statements convey this very succinently

Tat tvam asi (You are that, God)rRoefl

Aham Brahmasmi (I am the God)

अहं ब्रह्मास्मि

Prajnanam Brahma (True wisdom is the God)

प्रज्ञानं ब्रह्मा

Ayam Atma Brahma (My souul is the God)

अयं आत्मा ब्रह्मा

✍ Writer is Vice Chancellor of Makhanlal Chaturvedi National University of Journalism & Communication, Bhopal & Director Panchnad Research Institute.

****

Swamijis Teachings: That influenced me most.

✍ Prateek Bagi

Life and teachings of Swamiji has a great influence on me. In modern days, when the wisdom of great men are often ignored and uncared for, Vivekananda's, teachings has a great impact on my life. Even after 150 years I can apprehend how relevant and powerful his guiding thoughts were. His simple yet deep preaching can be pivotal pathfinder for today's youths if practiced on a day-today life. On his 150th birth centenary, I would like to pay my homage to this great scholar through this brief article, sighting some of his significant doctrines that have influenced my life the most. I hope this would also inspire other youths like me.

Swami Vivekananda (1863 1902), Indian Hindu monk and chief disciple of the 19th-century saint Ramakrishna who introduced ancient Indian philosophies to the world and is credited with numerous attainments, which includes raising interfaith awareness, bringing Hinduism to the status of a major world religion during the late 19th century and is perhaps best known for his inspiring speech which begins with addressing Sisters and brothers of America ...," at the Parliament of the World's Religions in Chicago in 1893. However, to avoid the repetition of well-known facts, I am refraining from getting into these aspects o his life; instead, I would only be limited to some of his philosophies that inspires me personally and hoping to create similar impact on other youths.

He has taught me that Life really is beautiful; after all, he said to believe in this world - which is life itself. There is meaning behind everything. Everything in the world is good, is holy and beautiful. If you see something evil, think that you do not understand it in the right light. Throw the burden on yourselves! Talking on Outlook, he said it is our own mental attitude, which makes the world what it is for us. Our thoughts make things beautiful, our thoughts make things ugly. The whole world is in our own minds. Learn to see things in the proper light. Swamiji often talked about love and explained it as an expansion, while all selfishness is contraction. Love is therefore the only law of life. He who loves lives, he who is selfish is dying. Therefore, love for love's sake, because it is law of life, just as one breathe to live. Talking about the Way We Feel, he said, feel like Christ and you will be a Christ; feel like Buddha and you will be a Buddha. It is feeling that is the life, the strength, the vitality, without which no amount of intellectual activity can reach God.

Setting ourselves free is a phrase we often use loosely, but to genuinely practice, is a difficult task. Through Swamiji's teachings we will understand how hard it really is: He said, the moment I have realised God sitting in

the temple of every human body, the moment I stand in reverence before every human being and see God in him - that moment I am free from bondage, everything that binds vanishes, and I am free. We are used to blame others whenever there is a failure, which is a kind of escapism, so he asks us, not to play The Blame Game: He says, Condemn none: if you can stretch out a helping hand, do so. If you cannot, fold your hands, bless your brothers, and let them go their own way. He has taught us to 'Listen To Our Soul: He said, you have to grow from the inside out. None can teach you, none can make you spiritual. There is no other teacher but your own soul. Being oneself and sticking to it is very important, particularly for youths. He said, Be Yourself: The greatest religion is to be true to your own nature. Have faith in yourselves! Another very inspiring message is that we all have the power, and we just need to find it. He said, all the powers in the universe are already ours. It is we who have put our hands before our eyes and cry that it is dark. Learning cant' stop and we learn everyday and from everything. On this he said, the goal of mankind is knowledge... now this knowledge is inherent in man. No knowledge comes from outside: it is all inside. What we say a man 'knows', should, in strict psychological language, be what he 'discovers' or 'unveils'; what man 'learns' is really what he discovers by taking the cover off his own soul, which is a mine of infinite knowledge. Finally, I would like to say that I learnt from Swamiji to think different, which is so very important, he has said, all differences in this world are of degree, and not of kind, because oneness is the secret of everything.

✍ Writer is a active Member of Panchnad Shodha Kendra, Patiala

****

Relevance of Vivekananda's Thoughts in Present Perspective

Dr. Pardeep Kumar* and Dr. Jai Dev

Why Vivekananda?

We, sitting at the cusp of 21st century, are witnessing the history's greatest advancements in every field. The children of present generation can't even imagine themselves in a world without computers or cell phones or ipods. Today we have easy access to any part of the world at our tips. Not only this, we use internet to find the route to our nearest grocery shop. We are so well equipped and informed with as much ease as never before. Yet we are holding seminars, discussions and study sessions on the life and thoughts of a monk who existed on this land a century ago! An inquisitive mind will definitely be intrigued as to what exactly we are trying to learn and apply from the life of Swami Vivekananda? Let us try to explore the answer to this pertinent question.

Present Challenges: Today's generation, despite being the most informed and technically advanced race, has unfortunately moved away from the essential ingredients of harmonious living i.e. spirituality and sensitivity. The world today is confronted with multiple challenges. The rift between the rich and poor is widening day by day which can be directly attributed to utter selfish and negligent attitude of the privileged class towards the deprived ones. Though the number of measures to eliminate hunger, poverty, unemployment and illiteracy are increasing, but these problems always seem to be on rise. This is because our efforts are not wholehearted. Corruption is rampant in the administrative structure and we do not hesitate to mass the wealth of country allocated for the upliftment of the needy and deprived. As a result, the problems of poverty, hunger, malnutrition, piracy, theft, terrorism, bribery, nepotism are widely prevalent in today's global society unlike any time in history. Indiscriminate cutting down of trees and forests for over ambitious industrialization prospects as well as over exploitation of natural resources like petroleum is leading to unwarranted environmental challenges. Global warming, melting of glaciers, depletion of ozone layer, oil slick, threat of nuclear emissions, environmental pollution, extinction of animal and plant species are just a few of the side effects of blind materialism practiced worldwide today. The menace of terrorism which is raising its ugly head in a new place each day has its roots in sheer directionless and disorientation of youth and rampant religious intolerance. Number of terror attacks in 2005 was 651 while in 2010, the number raised to 11632 (International Data, US DOS figures). The crime rate among the youngsters is increasing. The following data on consumption of drugs among teenagers gives an idea of the issue.

Drug and alcohol use: By the time most teenagers get to 15-16 years old, around 80% have already used alcohol and 65% of those have been drunk. **l** Hospital

admissions linked to alcohol use have more than doubled in the UK over the last 10 years, to over 200,000 in the last year, and there has been a 20% increase in GP's making prescriptions for alcohol dependency in the last 4 years. **l** Around 95% of alcoholics die from their disease and approximately 26 years earlier than their normal life expectancy. **l** The annual value of the global illegal drugs trade is around $400 billion. Global suicide rates have increased 60% in the past 45 years which reveals the dissatisfaction and fragility of nature and lack of strength of character among people.

The Way Out: Eyeing the multiple problems afflicting the global society today, we are forced to think a common solution which can come to our aid. As we saw, most of these issues are related to the selfish, ignorance and materialistic outlook of people. Unless we bring a revolution in the thoughts of people, we cannot dream of bringing an end to these multi thronged challenges. As we know, thoughts make up character and defines attitude and action of people. Thoughts of Swami Vivekananda come as an answer to the present-day challenges of humanity. We live a life for individualistic accomplishments and merely sympathize towards human drugery. Less are those who have true simpathy and least act to serve the humanity with conviction. Is the immense human potential, the consciousness and the divinity merely meant to earn our livelihood? If life has this meagre objective, then what is special about human beings? Where is that uniqueness and immenseness? Is it to fetch the sheer physical ends? Can it be the only target of the supreme being of the universe? And if the life is invested merely for it, then isn't it a mis-utilisation of the divine potential of this wonderful and extremely potential creature called 'human being'? What else could be a greater loss or leech of world resource than this? The need is to work upon the thoughts and philosophy of Swami Vivekananda to relate his pleas with the felt needs of the day in a workshop mode.

Vivekananda as an answer

The religion of selflessness: We need to popularize the religion of selflessness as propagated by Vivekananda. He said *"The only defination of morality is: all that is selfless is moral and that all that is selfish is immoral."* This alone should be the basis of all religions and doctrines followed worldwide. It can be the sole remedy to the pain and affliction of people in this callous and selfish scenario. Spirituality teaches Universal Love and tolerance. Where there is light, there is no question of darkness …and where there is spirituality, there is no question of hatred. Spirituality aims at leading a contended life within limited resources. Spirituality brings closer to nature and infuses Universal love. With a true spiritual outlook, one can find no distinction between others and one's own self. With such purity and divinity of thoughts, the virtues of selflessness, love and tolerance will automatically flow. I read one of the simple yet deeply touching quotations which explain the beauty of spirituality effectively. It says: *"I tried to find myself, but failed, I tried to find God, but failed, I tried to find my brethren, and I found all three."* Swami Vivekananda

preached such practical religion or spirituality. He said, *"He who gives man spiritual knowledge is the greatest benefactor of mankind and a such we always find that those were the most powerful of men who helped man in his spiritual needs, because spirituality is the true basis of all our activities in life."* The puja of God in one's puja-rooms while neglecting the starving people swarmed around is quite meaningless. Thus came Swami Vivekananda who asked to serve man as God. He told, *"For the next fifty years this alone shall be our keynote this, our great Mother India. Let all other vain gods disappear for the time from our minds. This is the only god that is awake, our own race "everywhere his hands, everywhere his feet, everywhere his ears, he covers everything." All other gods are sleeping. What vain gods shall we go after and yet cannot worship the god that we see all round us, the Virat? When we have worshipped this, we shall be able to worship all the other gods. ...What is needed is Chittashuddhi, purification of the heart. And how does that come? The first of all worship is the worship of the Virat of those all around us. Worship It. ...These are all our gods men and animals; and the first gods we have to worship are our countrymen. These we have to worship, instead of being jealous of each other and fighting each other. It is the most terrible Karma for which we are suffering, and yet it does not open our eyes!"* (Volume III 300-301) To a country obsessed with God and spirituality and with one's own mukti it was a difficult task to convince people to work for the masses as essential form of Sadhana. Tirelessly Swami Vivekananda worked to explain the concept and need of Service and to inspire the young generation to take to it.

Oneness as the basis of selfless Service: *Swami* Vivekananda's insight in the Selfless Service was rooted in the Oneness of the existence, Ekoham Bahusyam - One manifested as Many. Swami ji urged us *'the service of Jivas in a spirit of oneness'*. (Volume VII 198) For all those quoting Vedas and Vedanta he asked sternly, "Must the teaching 'looking upon all beings as your own self" be confined to books alone?" (VI 319) Not even a Sanyasi according to Swami Vivekananda could be permitted to not to take to service of the needy. He wrote to his brother disciple Swami Akhandananda, *"It is preferable to live on grass for the sake of doing good to others. The Gerua robe is not for enjoyment. It is the banner of heroic work. You must give your body, mind, and speech to "the welfare of the world". You have read "[(Sanskrit)] look upon your mother as God, look upon your father as God" but I say "[(Sanskrit)] the poor, the illiterate, the ignorant, the afflicted let these be your God." Know that service to these alone is the highest religion."* (Vol VI 288) That One who has manifested as many is our real Self. Aim of life is to realize that Self. Thus serving others is for one's good as the other is only an extended form of oneself. When once a disciple asked that "What is the necessity at all for doing good to others?" Swamiji replied, *"Well, it is necessary for one's own good. We become forgetful of the ego when we think of the body as dedicated to the service of others the body with which most complacently we identify the ego. And in the long run comes*

the consciousness of disembodies. The more intently you think of the well - being of others, the more oblivious of self you become. In this way, as gradually your heart gets purified by work, you will come to feel the truth that your own Self is pervading all beings and all things. Thus it is that doing well to others constitutes a way, a means of revealing one's own Self or Atman. Know this also to be one of the spiritual practices, a discipline for God realization." (Volume VII p 111) To god-oriented society of ours which had passed through many trials and tribulations to keep its religion alive, the society which had found the way to hold on to its religion by chanting names and doing pujas in the homes when the temples meant for puja and social regeneration were destroyed, he told authoritatively, *"After so much austerity, I have understood this as the real truth god is present in every Jiva; there is no other God besides that. `Who serves Jiva, serves God indeed'."* (Volume VII 247) When once a disciple asked Swamiji that, "What should be our motive in work compassion, or any other motive? Swamiji told that, *"Doing good to others out of compassion is good, but the Seva (service) of all beings in the spirit of the Lord is better."*

Promoting true education: Swamiji highly stressed on the importance of education. Swami Vivekananda was confident that with the right education our masses would work out the solutions to the problems. He said, *"The one thing that is at the root of all evils in India is the condition of the poor. The poor in the West are devils; compared to them ours are angels, and it is therefore so much the easier to raise our poor. The only service to be done for our lower classes is to give them education, to develop their lost individuality.... . They are to be given ideas; their eyes are to be opened to what is going on in the world around them; and then they will work out their own salvation. Every nation, every man, and every woman must work out their own salvation. Give them ideas that is the only help they require, and then the rest must follow as the effect. Ours is to put the chemicals together, the crystallization comes in the law of nature. Our duty is to put ideas into their heads, they will do the rest. This is what is to be done in India. It is this idea that has been in my mind for a long time."* Education is not just for bread and butter or to cut them off from their roots. Swamiji wanted such education should be given to masses which would keep their innate spirituality intact. If India has to guide the world in spirituality, it should be in the lives of the people, because the spirituality is always radiated and not taught. The education given by the Christian missionaries and also the government schools was with lot of derision of Hindu dharma. Swamiji feelingly wrote to his brother disciple, *"My whole ambition in life is to set in motion machinery which will bring noble ideas to the door of everybody, and then let men and women settle their own fate. Let them know what our forefathers as well as other nations have thought on the most momentous questions of life. Let them see especially what others are doing now, and then decide. We are to put the chemicals together; the crystallization will be done by nature according to her laws. Work hard, be steady, and have faith in the Lord. Set to*

work, Keep the motto before you "Elevation of the masses without injuring their religion". Swamiji wanted that the education should be such that the people know what is happening in the other countries and in the context of that, they work out the regeneration of India. We had stopped looking at the world and playing our role of contributing to the good of the world that is why the degradation came. He envisaged such an India to be rebuilt where

the great principle of Oneness of Vedanta has become practical. When the Oneness is experienced and gets manifested in the life of the people, in the family, social, educational systems then all the above three types of service become natural. Thus the ultimate type of service would be to rebuild our society based on Oneness where every needy would be cared for, where everyone would get the education required for his material and spiritual well-being and where everyone is employed in the service of the others. It is such India which would be the Guru of the world.

Awaken the divine nature: The ultimate service that can be done to an individual is to awaken the divinity in him/her. Swami Vivekananda wrote in a letter to Sister Nivedita on 7 June 1896, *"My ideal indeed can be put into a few words and that is: to preach unto mankind their divinity, and how to make it manifest in every movement of life."* To those preoccupied with their own salvation and practices, he said, *"Get up, and put your shoulders to the wheel how long is this life for? As you have come into this world, leave some mark behind. Otherwise, where is the difference between you and the trees and stones? They, too, come into existence, decay and die. If you like to be born and to die like them, you are at liberty to do so. Show me by your actions that your reading the Vedanta has been fruitful of the highest good. Go and tell all, "In every one of you lies that Eternal Power", and try to wake It up. What will you do with individual salvation? That is sheer selfishness. Throw aside your meditation; throw away your salvation and such things! Put your whole heart and soul in the work to which I have consecrated myself."* (Volume V 382) How the divinity is manifested in one's life? By shunning oneself away from the society? Swamiji was really revolutionary he said, *"The only way of getting our divine nature manifested is by helping others to do the same."* Swami ji in his lecture at Lahore told, *"There has been enough of criticism, there has been enough of fault - finding, the time has come for the rebuilding, the reconstructing; the time has come for us to gather all our scattered forces, to concentrate them into one focus, and through that, to lead the nation on its onward march… we must first seek out at the present day all the spiritual forces of the race, as was done in days of yore and will be done in all times to come. National union in India must be a gathering up of its scattered spiritual forces. A nation in India must be a union of those whose hearts beat to the same spiritual tune.*" (Volume III page 367-371) Vedanta, the Oneness of the existence, should be manifested again in the life of all the castes. Swamiji instructed his disciples, *"Impress upon their (masses) minds that they have the same right to religion as the Brahmins. Initiate all, even*

down to the Chandalas (people of the lowest castes), in these fiery Mantras (of Vedanta of Oneness and potential divinity). Also instruct them, in simple words, about the necessities of life, and in trade, commerce, agriculture, etc. If you cannot do this, then fie upon your education and culture, and fie upon your studying the Vedas and Vedanta!"

The topic of 'Swami Vivekananda and His Relevance Today' assumes more and more importance in modern times because of the dynamics of globalization and 'free market' economy forced upon or undertaken by one country after the other. Such socioeconomic changes produce a transient or temporary phase of social confusion, unrest, and apprehension. It produces stressful life style. When science and technology, inventions and discoveries, and advances in knowledge (including humanities -such as psychology and human resource management) fail to answer questions pertaining to declining moral and ethical values, widening gap between the rich and the poor, failing economies, and feeling of insecurity all around, one turns to something else for finding peace and balance of mind. Religion offers such a hope for most of us. This is particularly so because inherited spiritual and religious cultures from ancient times guide us on the path of both Abhyudaya (social and individual progress) and Nishreyasa (path of renunciation) for human fulfillment. Today, human evolution has progressed to the stage where we are prompted to look deeper into our religious beliefs and spiritual understanding. In one's own religion or faith one is sure to find treasures of higher truth; the truth of diversity held together by the unifying substratum universal divinity. Such probing in our age-old beliefs is the need of the hour. It will be the order of future civilization. It calls for conscious effort to acquire such broadness of vision and heart; any deliberate retrograde step would bear the forceful negative reaction from both nature and collective intellect. For this, it is not necessary to change one's faith (in idol, image, or symbol of any kind), one is sure to find higher planes of truth in his old beliefs themselves. The same principle applies to religion as well. As Swami Ashokananda says: "...it does not ask us to relinquish one form in favor of another to realize higher spiritual state. It wants us to see superior content in the same form by means of inner development. Even the highest spiritual realizations are possible through image worship, only the meaning of image worship changes as we progress along spiritual path. The image itself becomes spiritualized. It is then not stone or any other earthly material; it is spirit itself. The universe with all its variegated objects appears as divine." In this regard, it would be worthwhile to note that the four ways of human endeavor and aspirations (Purusharthas as they are called in Hindu system of thought) are 1) Dharma, 2) Artha, 3) Kama, and 4) Moksha. In the beginning is always Dharma (righteousness) in our efforts to produce and acquire wealth (Artha), and enjoy (Kama) the benefits of having earned the riches thus. Enjoyment alone, without consideration of social and collective welfare, leads to distortion and

degeneration in individual and collective psyche. Similarly, sense enjoyment alone, which does not lead to yearning for highest spiritual realization -Liberation or Freedom -, is also undesirable and inadequate human goal. Moksha or desire to become Free from the bondage of body and mind is the final purpose of human birth.

However, from time to time such teachings are misinterpreted or diluted, and thus they lose their force. They become mere play of words, and we see selfishness and sense enjoyment raising their head again as the sole aim in life. At best one tries to identify excellence in action or art or literature or physical sciences as the ultimate aim of human life. However, this is not spirituality; spirituality is a state of consciousness. It is realization of universal divinity; this is a factual thing and not a speculation or a concept.

Swami Vivekananda and his teachings

Through the life and teachings of Swami Vivekananda, we come to understand these teachings and messages of Sri Ramakrishna. It was Swami Vivekananda who interpreted the life of his *Guru* and spread its unique relevance for the modern world. For life of Swami Vivekananda please visit: Swami Vivekananda. The essence of the teachings of Swami Vivekananda was Advaita Vedanta as revealed in the life of his Master, Sri Ramakrishna. The main points of his teachings are: 1) that each soul is potentially divine, 2) the goal of human birth is to realize this Divinity within and manifest it for the welfare of the humanity, and 3) Essentially all religions lead to the same realization. The important point to note is Swami Vivekananda's insistence on individual liberation as a priority over the efforts to 'do good to the world'. The idea is to strive for special state or plane of consciousness that would lead a person to realize his or her true nature. Achieving such exalted state of altered consciousness forms the basis for human actions. Every human act should have this aim in sight, even in 'service to humanity and renunciation of sense pleasures'. Thus, religion or spirituality for the Swami was an act of inching higher and higher on the steps of consciousness, from animal consciousness to human consciousness, and from human consciousness to Divine Consciousness. There is no need of bringing in Personal God, if one feels so; there is no question of 'doing good to the world' if one is not so inclined. One need not perform worship and/or rituals if one does not believe them to be correct. Without all this also one can concentrate and focus the mind to reach higher state of consciousness. By one means or by undertaking all means, one should be able to rise from human plane to divine plane. The world would change its appearance then and a new knowledge will be gained. This is what all religion is about. This is what we call spiritual growth. This is what is the purpose of human evolution, evolution in matter and higher and higher manifestation or reflection of the Divine in it.

All the efforts in the form of yoga practices, rituals, charity, social services

etc. must be put to severe scrutiny: Are they useful in taking the aspirant to higher level of consciousness? If yes, follow them; if not, reject them. Are the practices making the aspirant strong to reject the practices themselves in due course of time? If yes, they are welcome; if not, it is better to throw them away. Does worship make the aspirant strong enough to jump out of temple itself? If yes, follow it; if not, it is better to discard the rituals. The spiritual practices or disciplines are but the means to the end of Self Realization, not end in themselves.

As Swami Vivekananda says in 'Is Vedanta the Future Religion?' (Complete Works Volume VIII, page 122) "...Gradual or not gradual, easy or not easy for the weak, is not the dualistic method based on falsehood? Are not all the prevalent religious practices often weakening and therefore wrong? They are based on a wrong idea, a wrong view of man. Would two wrongs make one right? Would the lie become truth? Would darkness become light?"..."...Vedanta is everywhere; only you must become conscious of it. These masses of foolish beliefs and superstitions hinder us in our progress. If we can, let us throw them off and understand that God is spirit to be worshipped in Spirit and in Truth. ...All the different ideas of God, which are more or less materialistic, must go. As man becomes more and more spiritual, he has to throw off all these ideas and leave them behind. If Vedanta - this conscious knowledge that all is one Spirit - spreads, the whole humanity will become spiritual. But is it possible? I do not know..."

Thus, harmony of religions, universal solidarity, and human being as the highest manifestation of Spiritual Consciousness are the basic fundamentals one should not lose sight of in reading or understanding Swami Vivekananda. The practical aspects of these teachings reflect in renunciation and service. This forms the twin ideal of Swami Vivekananda's emphasis for the modern man and woman to strive for. Along with excellence and perfection in every field of human endeavour, one should keep these ideals before eyes, lest the person should miss the aim.

✍ **Writer is a Asst. Prof. of Vegetable Science & Co-Writer Associate Prof. of Plant Breeding.**

****

ROLE OF SWAMI VIVEKANANDA'S IN INDIAN EDUCATIONAL SYSTEM

✍ **Dr. Vikas Saraf & Pawan Thakur**

Education is not the amount of information that is put into your brain and runs riot there, undigested all your life. We must have life-building, man making, character making and assimilation of ideas. We want that education by which character is formed, strength of mind is increased, the intellect is expanded and by which one can stand on one's own feet.

-Swami Vivekananda

Swami Vivekananda is one of the greatest thinkers and pioneers in social reform Indian Renaissance owes much to Swami Vivekananda. Among the contemporary Indian philosophers of education, he is one of those who revolted against the imposition of British system of Education in India. Swami Vivekananda considered that the system of Education introduced by the British did not conform to India's culture. Teachings and philosophy of Swami Vivekananda stressed on different aspects of religion, education, character building as well as social issues pertaining to India.

Keywords: Education, man making, character making, appreciated, technology, religion.

I. INTRODUCTION

Vivekananda was a Hindu monk from India who played significant role in introducing Vedanta to the Western world and also reviving and redefining certain aspect of the religion within India. Rabindranath Tagore commented about Swami Vivekananda and his teachings if you want to know India, study Vivekananda. In him everything is positive and nothing negative. Vivekananda realized a country's future depends on its people, so he mainly stressed on man, man-making is my mission, that's how he described his teaching. Vivekananda put his real ideals in few words and that was: to preach unto mankind their divinity and how to make it manifest in every movement of life.

II. AIMS OF EDUCATION

Swami Vivekananda said by education I do not mean the present system, but something in the line of positive teaching. Mere book learning would not do. We want that education by which character is formed, strength of mind is increased, the intellect is expanded and by which one can stand on one's own feet. What we want are western science coupled with Vedanta, Brahmacharya' as guiding motto, and also Sraddha and faith in one's own self. These words by Vivekananda represent the characteristics of the aims of Indian Educational system.

Swami Vivekananda says all knowledge that the world has ever received comes

from the mind the infinite library of the universe is in your own mind. The external world is simply the suggestion, the occasion, which sets you to study your own mind, but the object of your study is always your own mind. The falling of an apple gave the suggestion to Newton, and he studied his own mind. The job of the teacher is to uncover knowledge by his guidance. His guidance makes the mind active and the student himself unveils the knowledge lying with in him.

There is lot to learn from Vivekananda's views on education. He puts lot of emphasis on physical education, moral and religious education, Medium of language in education, women education and education for weaker sections of society. Let us elaborate his views on each of these components.

(i). Physical Education. Without the knowledge of physical education, the self-realization or character building is not possible. One must know, it is not possible to keep a strong mind without a strong body. In particular, Vivekananda stressed the need for physical education in curriculum. He said You will be nearer to Heaven through football than through the study of Gita. You will understand Gita better by your biceps, your muscles a little stronger. You will understand the Upanishads better and the glary of the Atman, when your body stands firm on your feet and you feel yourself as man.

(ii). Medium of Education. Like Mahatma Gandhi and Rabindranath Tagore, Vivekananda also emphasised on education through the medium of mother tongue. He said "Besides mother tongue, there should be a common language which is necessary to keep the country united". Vivekananda appreciated the greatness of Sanskrit. He said that it is the source of all Indian languages and a repository of all inherited knowledge. Therefore without Sanskrit, it will be impossible to understand Indian culture. It is like a store house of ancient heritage. To develop our society it is necessary that men and women know this language, besides the knowledge of their own mother tongue.

(iii). Moral and Religious Education. Vivekananda said, "Religion is the innermost core of education. Religion is like the rice and everything else, is like the curries. Taking only curries causes indigestion and so is the case with taking rice alone."Therefore, religious education is a vital part of a sound curriculum. Vivekananda considered Gita, Upanishads and the Vedas as the most important curriculum for religious education. For him, religion is attainment of self realization and divinity. It helps not only in individual's development but also in the transformation of total man. The true religion cannot be limited to a particular place of time. He pleaded for unity of world religion. He realized truth while practicing of religion.

(iv). Education of Masses. The individual development is not a full development of our nation, so it is necessary to give education to the society or common people. The education is not only confined to the well-to-do persons only but also to the poor people. Vivekananda emphasized on the improvement of the conditions of the masses and for this, he advocated mass education. He looks upon mass education

as an instrument to improve the individual as well as society. By this way, he exhorted to his countrymen to know-"I consider that the great national sin is the neglect of the masses, and that is one of the causes of our downfall. No amount of politics would be of any avail until the masses of India are once more well-educated, well-fed and well-cared for.

(v). Man Making Education. The educational philosophy of Swami Vivekananda is a harmonious synthesis between the ancient Indian ideals and modern Western beliefs. He not only stressed upon the physical, mental, moral, spiritual and vocational development of the child but also he advocated women education as well as education of the masses. The essential characteristics of educational philosophy of Swami Vivekananda are idealism, naturalism and pragmatism. In a naturalistic view points, he emphasized that real education is possible only through nature and natural propensities. In the form of idealist view point, he insists that the aim of education is to develop the child with moral and spiritual qualities. In the pragmatists view point, he emphasized the great stress on the Western education of technology, commerce, industry and science to achieve material prosperity. In short, first he emphasized spiritual development, then the material prosperity, after that safety of life and then solving the problems of fooding and clothing of the masses.

(vi). Self Education. Self education is the self knowledge. That is, knowledge of our own self is the best guide in the struggle of our life. If we take one example, the childhood stage, the child will face lot of problems or commit mistakes in the process of character formation. The child will learn much by his own mistakes. Errors are the stepping stones to our progress in character. This progress will need courage and strong will. The strong will is the sign of great character of the man

(viii). Women Education. Vivekananda considered women to be the incarnation of power. He rightly pointed out that unless Indian women secure a respectable place in this country, the nation can never move forward. . The important features of his scheme of female education are "Make women strong, fear-less, and conscious of their chastity and dignity". He insists that men and women are equally competent not only in the academic matters, but also in other spheres of life. Vivekananda being a keen observer could distinguish the difference in perception about the status of women in the West and in India. "The ideal women in India is the mother, the mother first, and the mother last.

(ix)Education for Weaker Section of Society. Vivekananda pleaded for the universal education so that the backward people may fall in line with others. To uplift the backward classes he chooses education as a powerful instrument for their life process. Thus education should spread to every household in the country, to factories, playing grounds and agricultural fields. If the children do not come to the school the teacher should reach them. Two or three educated men should team up, collect all the paraphernalia of education and should go to the village to impart education to the children. Thus, Vivekananda favoured education for different sections of society, rich and poor,

young and old, male and female.

III. METHOD OR PROCEDURE

Having analyzed the goal or objective of education, the next question that naturally arises is about the method of imparting education. Here again, we note the Vedantic foundation of Swamiji's theory. According to him, knowledge is inherent in every man's soul. What we mean when we say that a man 'knows' is only what he 'discovers' by taking the cover off his own soul. Consequently, he draws our attention to the fact that the task of the teacher is only to help the child to manifest its knowledge by removing the obstacles in its way. In his words: 'Thus Vedanta says that within man is all knowledge even in a boy it is so and it requires only an awakening and that much is the work of a teacher.' To drive his point home, he refers to the growth of a plant. Just as in the case of a plant, one cannot do anything more than supplying it with water, air and manure while it grows from within its own nature, so is the case with a human child. Vivekananda's method of education resembles the heuristic method of the modern educationists. In this system, the teacher invokes the spirit of inquiry in the pupil who is supposed to find out things for himself under the bias-free guidance of the teacher.

IV. FIELDS OF STUDY

Vivekananda, in his scheme of education, meticulously includes all those studies, which are necessary for the all-around development of the body, mind and soul of the individual. These studies can be brought under the broad heads of physical culture, aesthetics, classics, language, religion, science and technology. According to Swamiji, the culture values of the country should form an integral part of the curriculum of education. The culture of India has its roots in her spiritual values. The time-tested values are to be imbibed in the thoughts and lives of the students through the study of the classics like Ramayana, Mahabharata, Gita, Vedas and Upanishads. This will keep the perennial flow of our spiritual values into the world culture.

Education, according to Swamiji, remains incomplete without the teaching of aesthetics or fine arts. He cites Japan as an example of how the combination of art and utility can make a nation great.

V. CONCLUSION

In India, illiteracy of a large number of people has turned the visions of Education For all into empty dreams. Especially, population explosion has put a heavy pressure on its available infrastructure. India's effective literacy rate has recorded a 9.2 per cent rise to reach 74.04 per cent, according to provisional data of the 2011 census released today. Interestingly, literacy rate improved sharply among females as compared to males. While the effective literacy rate for males rose from 75.26 to 82.14 per cent marking a rise of 6.9 per cent, it increased by 11.8 per cent for females to go from 53.67 to 65.46 per cent. According to provisional totals of the latest census, literates constitute 74 per cent of total population aged seven and above.

As per recently concluded census 2011-12, Literacy rate in India has shot significantly from 64. 08 to 74. 04%. About 110 million women literates added in the recent decade

compared to 107 million men literates, so gap between men literates and women literates also reduced. In absolute number, the figure of illiterate is alarming. No nation can afford to have large number of its population to remain illiterate, ignorant and unskilled. Today we live in twenty first century. It is an age if inventions and make innovations. So, what do you want from education system: to make you just a LITERATE or an EDUCATED. According to me Indian education is one of the best in the world. But problem is in the way it is imparted, and its reach. In most of the schools and colleges emphasis is given only on theoretical knowledge and the performance of students is also judged on the basis of that. Attention on practical knowledge is very less. But sets the mindset of students the same way and demoralizing the ones who are good in practical aspects.

Swami Vivekananda had said the education which does not help the common mass of people to equip themselves for the struggle for life, which does not bring out strength of character, a spirit of philanthropy, and the courage of a lion ... is it worth the name? Real education is that which enables one to stand on one's own legs. The education that you are receiving now in schools and colleges is only making you a race of dyspeptics. You are working like machines merely and living a jelly-fish existence. Our education is making us read, write and speak. We are capable of reading the statutory warning "smoking is injurious to health" written on the cigarettes packets. But we are incapable of understanding it.

REFERENCES

[1]. Chandra, S. (1994) : Swami Vivekananda's Vision of Education, In : Roy, S. & Sivaramkrishnan, M. (Eds), Reflections on Swami Vivekananda : Hundred Years After Chicago, Sterling Publishers Pvt. Ltd, New Delhi.

[2]. Complete Works of Swami Vivekananda (8 Volumes). Advaita Ashrama, Kolkata, 1985.

[3]. Ghosal , S. (2012) : The Educational Thoughts of Swami Vivekananda : A Review, University News, 50 (09), Feb. 27 March 04, 2012, New Delhi

[4]. Jitatmananda, S. (1998) : Swami Vivekananda : Prophet and Pathfinder (4th edt.), Shri Ramkrishna Ashrama, Rajkot.

[5]. Vivekananda, Swami (1970) : Selections from Swami Vivekananda, Advaita Ashrama, Kolkata.

[6]. Vivekananda, Swami (1993) : My India : The India Eternal, Ramkrishna Mission Institute of Culture, Kolkata, (rpt. 2008).

[7]. Vivekananda, Swami (2007) : Shiksha Prasanga, Udbodhan Karjalaya, Kolkata.

[8]. Walia, Kiran Ed. (2008) : My Idea of Education Swami Vivekananda, Advaita Ashrama, Kolkata.

✍ **Writer is Prof. of Management &Co-Writer is Teacher of Computer Application**

****

'स्वामी विवेकानंद के विचारों पर आधारित हो देश की शिक्षा नीति'

स्वामी विवेकानंद के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए देश भर के शिक्षाविद एकजुट

स्वामी विवेकानंद सार्ध शती समारोह समिति के तत्वावधान में दिल्ली में राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन

अनुवादक : सुरेन्द्र पॉल

''समूचे विश्व को भारत की समृद्ध सांस्कृतिक विरासत से परिचित कराने वाले और 'वसुधैव कुटुम्बकम्' एवं विश्वबंधुत्व का ज्ञान देने वाले स्वामी विवेकानंद के विचारों को भारत की शिक्षा नीति में शामिल किया जाना अत्यंत आवश्यक है। छात्रों का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होना जरूरी है ताकि वे राष्ट्रनिर्माण में अपना योगदान सुनिश्चित कर सकें। स्वामी जी ने इस बात पर सदा बल दिया कि शिक्षा, मात्र ज्ञान हासिल करने के लिए नहीं बल्कि व्यावहारिक और जीवन शैली का हिस्सा होनी चाहिए। उनके इन विचारों को शिक्षा नीति में शामिल किया जाना चाहिए ताकि युवा उनके विचारों से सीख हासिल कर सकें।''

स्वामी विवेकानंद के विचारों और उनके द्वारा निर्धारित लक्ष्यों को प्राप्त करने व इस पर विस्तृत कार्ययोजना तैयार कर उसे मूर्त रूप प्रदान करने के लिए देश भर के शिक्षाविद बीते 16 व 17 नवंबर 2013 को दिल्ली के सिविक सेंटर में एकत्रित हुए। स्वामी विवेकानंद सार्ध शती समारोह समिति (एस.वी.एस.एस.एस.एस.) द्वारा स्वामी जी के 150वें जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में 'शिक्षा पर स्वामी विवेकानंद के विचार: राष्ट्रीय पुनरुत्थान के लिए एक दृष्टि' विषय पर आयोजित राष्ट्रीय कुलपति सम्मेलन में देश के लिए एक प्रभावी शिक्षा नीति तैयार करने पर व्यापक विचार-विमर्श हुआ। इस सम्मेलन में देश भर के विभिन्न केंद्रीय, राज्य, डीम्ड एवं निजी विश्वविद्यालयों के कुलाधिपति, कुलपति, निदेशक व जाने माने शिक्षाविद् सम्मिलित हुए।

इस दो दिवसीय सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए केंद्रीय शिक्षा मंत्री डॉ. एमएम पल्लम राजू ने कहा कि दुनिया को विश्वबंधुत्व का ज्ञान देने वाले स्वामी विवेकानंद के विचारों को शिक्षा नीति में शामिल करना जरूरी है। उन्होंने कहा कि छात्रों का शारीरिक, मानसिक व आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ होना जरूरी है। स्वामी विवेकानंद ने इन तीनों बातों पर जोर दिया और उन्होंने अनुशासन का पाठ भी पढ़ाया था। उन्होंने धार्मिक शिक्षा पर बल देते हुए संस्कृत को भारतीयों के लिए अनिवार्य बताया था। शिक्षा सभी के लिए अनिवार्य होनी जरूरी है क्योंकि चरित्र निर्माण में शिक्षा की अहम भूमिका है।

इस सत्र को संबोधित करते हुए परमाणु ऊर्जा आयोग के पूर्व अध्यक्ष अनिल काकोदकर ने अपने अनुभव साझा किए। उन्होंने कहा कि हमारी शिक्षा व्यवस्था में कुछ तो खामियां है जिनकी वजह से हम हीनभावना से ग्रस्त हैं। युवाओं में आत्मविश्वास जागृत करने की स्वामी जी की शिक्षा आज अधिक प्रासंगिक

है। श्री काकोदकर ने इस बात की आवश्यकता जताई कि भारत को विभिन्न क्षेत्रों में लीक से हटकर आविष्कार करने चाहिए।

लोकसभा के पूर्व महासचिव, संविधान विशेषज्ञ एवं स्वामी विवेकानंद सार्ध शती समारोह समिति के अध्यक्ष डॉ. सुभाष कश्यप ने अपने संबोधन में कहा कि आज समाज में हिंसा, अपराध व भ्रष्टाचार बढ़ गया है। दुर्भाग्य से आज मनुष्य मात्र एक वस्तु बनकर रह गया है और उसका केवल सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) और सकल राष्ट्रीय उत्पाद (जीएनपी) के रूप में मूल्यांकन किया जा रहा है। यह गिरावट स्वामी जी की शिक्षा के खिलाफ है, जिन्होंने शिक्षा का उद्देश्य सदा व्यक्तित्व निर्माण माना। स्वामी विवेकानंद ने हिंसा व भ्रष्टाचार रहित समाज की परिकल्पना की थी। इसके लिए उन्होंने शिक्षा को जरूरी बताया है। स्वामी जी का हवाला देते हुए उन्होंने कहा कि यूरोपीय पनुर्जागरण 100 प्रबुद्ध व्यक्तियों के बाद आया जबकि स्वामी जी के अनुसार 100 प्रबुद्ध आत्माएँ भारत का पुननिर्माण करने में सक्षम हैं।

विषय प्रस्तुतीकरण करते हुए बीएमसीसी महाविद्यालय पुणे के पूर्व प्राचार्य एवं स्वामी विवेकानंद सार्ध शती समारोह समिति के सचिव प्रो. अनिरुद्ध देशपाण्डे ने कहा कि स्वामी जी के शिक्षा पर विचारों को साकार करने की संभावनाएं तलाश करना इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य है। पूर्व आईपीएस अधिकारी एवं एस.वी.एस.एस.एस.एस. के प्रधान श्री आर.एस. गुप्ता ने भी मंच साझा किया।

उद्घाटन सत्र के उपरांत विभिन्न विषयों पर अन्य सत्र आयोजित हुए। 'व्यक्तित्व निर्माण एवं राष्ट्रीय पुनरुत्थान' विषय पर आयोजित सत्र में अतिथि वक्ता देव संस्कृति विश्वविद्यालय के कुलाधिपति डॉ. प्रणव पण्डया ने इस बात पर चिंता जताई कि हमारे देश में कोई उल्लेखनीय वैज्ञानिक आविष्कार नहीं हुआ। उन्होंने कहा कि स्वामी जी हमेशा उन लोगों को फटकार लगाते थे जो व्यर्थ के अनुष्ठानों का पालन करते थे। वे जमशेदजी टाटा के सहयोग से एक वैदिक विश्वविद्यालय खोलना चाहते थे। डॉ. पण्डया ने कहा कि समय तेजी से बदल रहा है और स्वामी विवेकानंद की राष्ट्रीय पुनरुत्थान की दृष्टि हम सभी को सिद्ध करनी चाहिए। इस सत्र की अध्यक्षता करते हुए बंग्लौर विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. थिम्मे गौड़ा ने बताया कि उनका विश्वविद्यालय स्वामी विवेकानंद की शिक्षा को स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर पाठ्यक्रमों में शामिल करने जा रहा है।

द्वितीय सत्र में विवेकानंद केंद्र कन्याकुमारी की उपाध्यक्ष सुश्री निवेदिता भिडे ने 'जीवन उद्देश्य एवं चरित्र निर्माण' विषय पर अपने विचार व्यक्त करते हुए स्वामी जी के विचारों को प्रतिपादित किया। इस सत्र की अध्यक्षता करते हुए कुशाभाउ ठाकरे पत्रकारिता विश्वविद्यालय रायपुर के कुलपति श्री सचिदानंद जोशी ने कहा कि शिक्षकों को स्वयं उच्च एवं आदर्श चरित्र का उदाहरण प्रस्तुत करना चाहिए। इस सत्र में विभिन्न विश्वविद्यालयों के कुलपतियों एवं शिक्षाविदों ने भी अपने विचार व्यक्त किये।

'स्वामी जी के चिंतन की शिक्षा में प्रासंगिकता' विषय पर आयोजित सत्र में स्वामी विवेकानंद रामकृष्ण विश्वविद्यालय कोलकाता के कुलपति स्वामी आत्मप्रियानंद ने विभिन्ना धार्मिक ग्रंथों को उद्धृत करते हुए शिक्षा पर भारतीय एवं स्वामी जी के विचारों का

वर्णन किया। उन्होंने कहा कि ऐसी अवस्था में ज्ञान का कोई उपयोग नहीं है यदि वह अपने जीवन की धाराओं को पार कर प्रतिकूल प्रवाह का सामना नहीं कर सकता। स्वामी जी एक ऐसी शिक्षा चाहते थे जो चरित्र और सामर्थ्य से ओतप्रोत एक जागृत मनुष्य का निर्माण कर सके।

'विषयवस्तु एवं अनुसंधान' विषय पर आयोजित सत्र की अध्यक्षता कर्नाटक राज्य महिला विश्वविद्यालय, बीजापुर की कुलपति डॉ. मीना चंदावरकर ने की और अमृता विश्वविद्यालय कोयंबतूर के कुलपति डॉ. वेंकट रंगन अतिथि वक्ता के रूप में उपस्थित हुए। डॉ. मीना चंदावरकर ने कहा कि अब समय आ गया है कि हम आईटी से 'इंडियाज़ टुमॉरो' (भारत का कल) के विषय में सोचें। डॉ. वेंकट रंगन ने अपने विश्वविद्यालय की सामाजिक गतिविधियों की चर्चा करते हुए बताया कि उनके विद्यार्थी सामाजिक कार्य व सार्वजनिक स्थानों की सफाई करते हैं जिससे उन्हें आधुनिकीकरण के प्रतिकूल प्रभावों का भी पता चलता है।

इस अवसर पर अन्य कई विषयों पर भी व्याख्यान हुए। इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के अनुवाद अध्ययन एवं प्रशिक्षण स्कूल के निदेशक डॉ. ए.के. सिंह ने 'विश्व बंधुत्व' विषय पर, केनरा बैंक प्रबंधन स्कूल, बंगलूरू के निदेशक एम.के. श्रीधर ने 'व्यक्तित्व निर्माण' विषय पर, सीआईसी गोवा की श्रीमती लीना महेंदले ने 'महिला शिक्षा' विषय पर और अरुणाचल प्रदेश के उच्च शिक्षा एवं तकनीकी शिक्षा निदेशक डॉ. जोरम बेगी ने 'वंचित वर्ग के लिए शिक्षा' विषय पर अपने विचार रखे।

17 नंवबर को 'विज्ञान एवं अध्यात्म' विषय पर आईआईटी दिल्ली के निदेशक मंडल के अध्यक्ष डॉ. विजय भटकर के विशेष व्याख्यान का आयोजन किया गया। उन्होंने विषय संबंधी विविध आयामों पर चर्चा करते हुए बताया कि किस प्रकार विज्ञान, विशेषकर कंप्यूटर अध्यात्म के साथ सुर मिला रहा है। मध्य प्रदेश आयुर्विज्ञान विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. डी.पी. लोकवानी ने इस कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए कहा कि आधुनिक इतिहास में स्वामी विवेवानंद ही एकमात्र व्यक्ति थे जो आध्यात्मिक रूप से वैज्ञानिक और वैज्ञानिक रूप से आध्यात्मिक थे। प्रायोगिक प्रस्तुतियों पर भी एक सत्र का आयोजन किया गया जिसमें शिक्षाविदों ने स्वामी जी की शिक्षा-दृष्टि को प्रदर्शित करने के लिए विभिन्न व्यावहारिक प्रयोग किये।

तिरुवेदकम स्थित विवेकानंद महाविद्यालय के प्राचार्य डॉ. बी.रामामूर्ति ने बताया कि उनके महाविद्यालय का निर्माण प्राचीन भारतीय गुरुकुलों के आधार पर हुआ है जिसमें योग और आध्यामिक शिक्षा भी दी जाती है। अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद के राष्ट्रीय संगठन मंत्री श्री सुनील आंबेकर ने संगठन द्वारा चलाए गये 'थिंक इंडिया' अभियान और 'अनुभूति' कार्यक्रम की जानकारी दी जिसमें छात्रों के समूहों द्वारा गैर सरकारी संगठनों के साथ मिलकर सामाजिक परिवर्तन के कार्य किये जाते हैं। पंजाब तकनीकी विश्वविद्यालय के डीन डॉ. बूटा सिंह सिद्धू ने बताया कि स्वामी विवेकानंद के आदर्शों से प्रेरित होकर उनके विश्वविद्यालय द्वारा मूल्य आधारित शिक्षा पर एक पूरा पाठ्यक्रम तैयार किया गया है। औरो विश्वविद्यालय सूरत के कुलपति डॉ. कमलेश मिश्रा ने बताया कि उनके विश्वविद्यालय की स्थापना श्री अरविंदों के

आदर्शों पर हुई है और वहां एक दिन में केवल एक विषय पढ़ाया जाता है और कक्षाओं के भीतर शिक्षा के अलावा व्यावहारिक शिक्षा पर जोर दिया जाता है।

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुए वीआईटी विश्वविद्यालय वैल्लूर के कुलाधिपति डॉ. विश्वनाथन ने इस बात पर चिंता जताई कि ब्रिटिश हुकूमत के समय से हमारी शैक्षणिक प्रणाली में कोई परिवर्तन नहीं हुए हैं। अंग्रेजों द्वारा शुरू की गई संबद्धता प्रणाली आज भी भारत, पाकिस्तान और बांग्लादेश में मौजूद है जिसे जितनी जल्दी हो सके समाप्त किया जाना चाहिए।

'वर्तमान शिक्षा प्रणाली में स्वामी विवेकानंद की शिक्षाओं का अनुप्रयोग' विषय पर आधारित सत्र में अतिथि वक्ता पंजाब तकनीकी विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. रजनीश अरोड़ा ने विश्वविद्यालयों को और अधिक स्वायत्तता प्रदान किये जाने की आवश्यकता जताई। उन्होंने कहा कि विश्वविद्यालयों को सरकारी नियंत्रण से मुक्त रखा जाना चाहिए। उन्होंने कहा कि मैकाले द्वारा दी गई शिक्षा प्रणाली से बहुराष्ट्रीय कंपनियों के सेवक ही पैदा हो रहे हैं।

इस सत्र की अध्यक्षता करते हुए एमएस विश्वविद्यालय बड़ौदा के कुलपति प्रो. योगेश सिंह ने वैज्ञानिक खोजों व आविष्कारों की दिशा में सतत् प्रयास करने व इस कार्य में सबसे सहयोग करने की भावुक अपील की।

माखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. बृज किशोर कुठियाला ने 'शिक्षक की भूमिका और जिज्ञासा की भावना' विषय पर प्रस्तुति देते कहा कि एक शिक्षक को अपने विद्यार्थियों के लिए हमेशा सरलीकरण करने वाले और सुगमकर्ता (फेसिलिटेटर) की भूमिका निभानी चाहिए। प्रो. कुठियाला ने कहा कि स्वामी जी मनुष्य को आध्यात्मिक प्राणी मानते थे जबकि पश्चिम में उसे कोरी स्लेट (ताबुला रासा) माना जाता है। सत्र की अध्यक्षता करते हुए रविशंकर शुक्ला विश्वविद्यालय रायपुर के कुलपति डॉ. एस.के. पाण्डे ने कहा कि हमारी पूरी शिक्षा व्यवस्था अंकोन्मुखी हो गई है और पूरी तरह से कोचिंग संस्थानों पर आश्रित हो गई है, जिसे बदलने की जरूरत है। प्रतिभागी कुलपतियों और शिक्षाविदों ने भी इस विषय पर चर्चा में अपने विचार व्यक्त किये।

भारतीय भाषाओं पर आधारित सत्र में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के पूर्व कुलपति प्रो. कपिल कपूर ने इस बात पर जोर दिया कि हमें भारतीय भाषाओं की शिक्षा को सर्वाधिक महत्व देना चाहिए। उन्होंने कहा कि हमें स्वामी विवेकानंद से प्रेरणा लेनी चाहिए जिन्होंने अंग्रेजी का प्रयोग केवल एक माध्यम के रूप में भारतीय ज्ञान का प्रसार करने के लिए किया। इस सत्र की अध्यक्षता रामकृष्ण मिशन के उपाध्यक्ष श्री लक्ष्मी नारायण झुनझुनवाला ने की।

भविष्य की कार्ययोजना पर एक खुला सत्र रामकृष्ण मठ में आयोजित किया गया जिसमें सभी प्रतिभागियों ने इस सम्मेलन के निष्कर्षों को अमलीजामा पहनाने के लिए अपने विचार व्यक्त किये। एक महत्वपूर्ण सुझाव यह आया कि भारतीय शैक्षणिक संस्थानों में संस्कृत भाषा एवं पश्चिमी दर्शन के साथ-साथ भारतीय दर्शन अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाना चाहिए। साथ ही ऐसी नेटवर्किंग प्रणाली विकसित करने का भी सुझाव आया जिससे इस सम्मेलन में उपस्थित शिक्षाविद् भविष्य में भी एकदूसरे से जुड़े रहें।

इस अवसर पर प्रो. बृज किशोर कुठियाला ने भारत के पूर्व राष्ट्रपति डॉ. एपीजे अब्दुल कलाम द्वारा भेजे गये संदेश का वाचन किया। इस संदेश में डॉ. कलाम ने इस सम्मेलन को 'शिक्षाविदों की संसद' की उपमा देते हुए कहा कि नैतिक नेतृत्व के साथ राष्ट्र निर्माण कुलपतियों के लिए एक मिशन है। उन्होंने इस बात पर जोर दिया है कि युवाओं में उद्यमिता और सुनियोजित जोखिम लेने की प्रवृत्ति का पोषण किया जाना चाहिए। आशावाद से ओतप्रोत डॉ. कलाम के संदेश का सार था- जब लोग बड़ा सोचते हैं तो राष्ट्र महान बनता है।

इस कार्यक्रम के मुख्य अतिथि न्यायमूर्ति रमा जोइस (सेवानिवृत्त) ने धर्म और विधि के भारतीय परिप्रेक्ष्य पर विस्तार से प्रकाश डालते हुए कहा कि अंग्रेजी शब्द 'सेक्युलेरिज्म' का अशुद्ध अनुवाद 'धर्मनिर्पेक्षता' होने के परिणामस्वरूप कई समस्याएं पैदा हुई हैं। उन्होंने कहा कि यह देश का दुर्भाग्य है कि वोट बैंक से प्रभावित हमारे राजनेता संवैधानिक सर्वोच्चता पर राजनीतिक सर्वोच्चता को हावी करने के लिए प्रयासरत हैं। उन्होंने कहा कि भारत में कभी भी एक शासन, एक धर्म और भाषा नहीं रही, लेकिन फिर भी हम एक राष्ट्र हैं जिसे यहां की समृद्ध संस्कृति ने जोड़े रखा है। हम कभी अपने प्रयास नहीं छोड़ते जिसके कारण भारत 'मृत्युंजय' है। डॉ. सुभाष कश्यप ने इस अवसर पर कहा कि स्वामी जी दुर्गा के उपासक थे इसलिए उन्होंने देश को शक्तिशाली एवं सामर्थ्यपूर्ण बनाने पर बल दिया। मंच को प्रो. अनिरुद्ध देशपांडे ने भी साझा करते हुए अपने विचार व्यक्त किये।

इस दो दिवसीय इस सम्मेलन में देश भर से 200 से अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया और अपने विचारों और अनुभवों को विभिन्न सत्रों में साझा किया जिसके कारण यह अनूठा आयोजन एक सफल प्रयोग रहा। किसी गैर सरकारी संस्था द्वारा आयोजित यह शिक्षाविदों का सम्मेलन इस प्रकार का पहला आयोजन था।

सर्वसम्मति वक्तव्य का पूर्ण पाठ

स्वामी विवेकानंद की 150वीं जयंती के उपलक्ष्य में आयोजित कुलपतियों के राष्ट्रीय सम्मेलन में देश भर के शिक्षाविदों ने स्वामी जी की शिक्षाओं को व्यावहारिक रूप प्रदान करने के लिए व्यापक विचार-विमर्श किया ताकि हमारे शिक्षकों और विद्यार्थियों में आध्यात्मिक चेतना, राष्ट्रभावना और सार्वभौमिक दृष्टि का विकास हो। भारत में शिक्षा, विशेषकर उच्च शिक्षा का नवीनीकरण करने पर विशेष बल दिया गया।

दो दिनों तक इस विषय से संबंधित विभिन्न पहलुओं पर चर्चा के उपरांत प्रतिभागी कुलाधिपति, कुलपति और शिक्षाविद इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि स्वामी विवेकानंद की शिक्षा के ये विविध पक्ष भारत की वर्तमान शैक्षणिक परिस्थितियों में सर्वथा प्रासंगिक है:-

पहला- शिक्षा पहले से ही मनुष्य में पूर्णता की अभिव्यक्ति है।

दूसरा- उस पूर्णता को प्राप्त करने के क्रम में छात्रों को आध्यात्मिक और शारीरिक समग्र रूप से विकसित किया जाना आवश्यक है और उनमें जिज्ञासु प्रवृत्ति का संवर्धन होना चाहिए।

तीसरा- कोई भी परमात्मा की ऐसी अभिव्यक्ति को केवल स्वार्थ के लिए प्राप्त नहीं कर सकता। यह परमावश्यक है कि समाज और राष्ट्र के प्रति छात्रों के

मानस को प्रतिबद्धता और उत्तरदायित्व की भावना से ओतप्रोत किया जाना चाहिए। स्वामी जी का मानना था कि वह शिक्षा व्यर्थ है जो शिक्षा साथी देशवासियों की दशा को सुधारने के लिए काम नहीं आती। चौथा- संपूर्णता सबमें समाहित है। जो लोग इस प्रकार की संपूर्णता चाहते हैं उन्हें प्राकृतिक रूप से विश्व बंधुत्व की एक गहरी भावना से ओतप्रोत होना चाहिए।

पाँचवां- अपने भीतर की संपूर्णता मातृभाषा में सर्वाधिक स्वाभाविक अभिव्यक्ति कर पाती है। सार्वभौमिकता के भाव और दृष्टिकोण से भरा एक विद्यार्थी विश्व की सभी भाषाओं का सम्मान करेगा और कई भाषाएं सीखेगा। लेकिन उसकी शिक्षा की नींव मातृभाषा में ही पड़नी चाहिए। संस्कृत भाषा का अध्ययन आवश्यक है क्योंकि संस्कृत भारतीय सभ्यता के संचित ज्ञान का अमूल्य भंडार है।

छठा- स्वामी जी ने नारी शिक्षा पर विशेष बल दिया था और वह मानते थे कि महिलाओं को शिक्षित करने से शिक्षा को बढ़ावा देने का रास्ता मार्ग प्रशस्त होगा।

स्वामी विवेकानंद के उपरोक्त विचारों के आलोक में सम्मेलन में उपस्थित कुलाधिपतियों, कुलपतियों एवं शिक्षाविदों ने विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों में विभिन्न गतिविधियां आयोजित करके निम्नलिखित लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करने का संकल्प लिया।

1. विश्वविद्यालयों और शिक्षण संस्थानों के परिवेश और वातावरण को स्वामी विवेकानंद की शिक्षाओं के अनुसार ढालने का प्रयास। पुस्तकालयों में स्वामी जी द्वारा और उन पर लिखी गई पुस्तकों के अलावा भारतीय सभ्यता और संस्कृति पर आधारित पुस्तकों का समावेश। इससे संबंधित विभिन्न विषयों पर विशेष व्याख्यान, संगोष्ठियों व विशेष कक्षाओं का आयोजन।

2. विभिन्न विषयों के पाठ्यक्रमों में विशेष तौर पर स्वामी जी की शिक्षाओं और भारतीय दर्शन व विचारों का समावेश।

3. विभिन्न विषयों के अंतर्गत ऐसे व्यावहारिक कार्यों (प्रोजेक्ट) का समावेश जिससे विद्यार्थियों को अपने पड़ोस के निवासियों और विभिन्न समुदायों से मेलजोल बढ़ाने और सीखने-सिखाने के अवसर मिल सकें।

4. स्वामी जी की शिक्षाओं और भारतीय दर्शन व विचारों पर आधारित नये सर्टिफिकेट, डिप्लोमा व डिग्री पाठ्यक्रम शुरू करना।

5. भारतीय सभ्यता के विभिन्न पहलुओं पर सामान्य रूप से और स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विशेष रूप से शोध प्रवृत्ति का संवर्धन। इस उद्देश्य के लिए नये केंद्र व अध्ययन पीठों की स्थापना। भारतीय संस्कृति एवं भाषाओं में शोध के लिए समर्पित नये विश्वविद्यालयों एवं संस्थानों की स्थापना।

6. भारतीय भाषाओं में सभी स्तरों पर शिक्षण एवं पाठ्य पुस्तकों के विकास को प्रोत्साहित करना।

7. शिक्षा में महिलाओं को विशेष प्रोत्साहन देना और पाठ्यक्रमों की समीक्षा कर महिलाओं के प्रति सम्मान जागृत करने की भावना को सुनिश्चित करना।

8. अपने परिसरों में सह-पाठ्यक्रम गतिविधियों के अंतर्गत शारीरिक शिक्षा एवं योग

प्रशिक्षण की सुविधाएं उपलब्ध कराना।

9. स्वामी जी एवं देश की महान विभूतियों पर आधारित सह-पाठ्यक्रम परियोजना शुरू करना।

10. विभिन्न विषयों के अंतर्गत भारत की उपलब्धियों पर आधारित सह पाठयक्रम परियोजना शुरु करना।

11. भारतीय भाषाओं और संस्कृत की शिक्षा देने के लिए सह-पाठयक्रम एवं पाठ्यक्रम तैयार करना।

12. भारतीय विचारों और दर्शन पर सामान्य रूप से और स्वामी विवेकानंद के विचारों पर विशेष रूप से अध्ययन समूह का गठन एवं संगोष्ठी आदि का आयोजन।

पाठ्येत्तर गतिविधियां :

13. विद्यार्थियों को उनके पड़ोस की बस्तियों व समुदायों के साथ संवाद करने के लिए प्रोत्साहित करना और उनके बीच शैक्षणिक एवं स्वास्थ्य संबंधी सेवा गतिविधियों का आयोजन करने के लिए प्रोत्साहित करना।

14. छात्रों को स्थानीय समुदायों के बीच रहने व उनसे सीखने के लिए प्रेरित करने के लिए अल्पकालिक फैलोशिप कार्यक्रम शुरू करना।

इस अवसर पर सभी प्रतिभागी शिक्षाविद् सर्वसम्मति से इस बात के लिए सहमत हुए कि वे अपने-अपने संस्थानों में इस कार्ययोजना एवं संकल्पों को साकार करने के लिए सतत् प्रयास करेंगे और वे इस दिशा में अपने अनुभवों को अपने संबंधित संस्थानों में साथी शिक्षकों के साथ साझा करेंगे ताकि सभी एकदूसरे से सीख सकें। इस प्रकार स्वामी विवेकानंद की शिक्षा के माध्यम से भारत में उच्च शिक्षा के कायाकल्प का स्वप्न साकार हो सकेगा।

✍ अनुवादकमाखनलाल चतुर्वेदी राष्ट्रीय पत्रकारिता एवं संचार विश्वविद्यालय के विज्ञापन एवं जनसंपर्क विभाग में सहायक प्राध्यापक हैं।

****

PANCHNAD PUBLICATIONS

1. **Hindu Nationalism- A contemporary perspective**

   Editors: Shyam Khosla and Prof B.K. Kuthiala. Introduction by Dr. B. L. Gupta.

   Contributors : Dr Murli Manohar Joshi, Justice Rama Jois , Francois Gautier, Praful Goradia, Subhash C Kashyap, Shyam Khosla, Justice T.U. Mehat, Kishore Asthana, P.C.Dogra, G.V.Gupta, IAS (Retd.), M.G.Vaidya, Michel Danino, Swadesh Sharma, Prof. B.K.Kutiala.

2. **Indian Security : Threats and Strategies**

   Editors: Maj. Gen. Rajendra Nath (Retd.) Shyam Khosla, Ashok Malik

   Contributors : Krishan Kant, Lt. Gen. S.K.Sinha (Retd.) Lt. Gen. A.M.Vohra (Retd.), Maj. Gen. Rajendra Nath (Retd.) M.L.Sondhi, Rajendra Sareen, Pradyot Pradhan, Dr. R.N.Mishra, Dr. Dharmendra Goel, Rakesh Kumar Dutta, Lt. Col. Gautam Sharma and Air Commodore N.B.Singh.

3. **Electoral System in India**

   Editors : Shyam Khosla and Ashok Malik

   Contributors : L.K.Advani, Madhu Dandavate, R.K.Trivedi and Dr. N.K.Trikha

4. **Terrorism in Punjab : A contemporary perspective**

   Editors: Shyam Khosla and Ashok Malik.

   Contributors: Justice H R Khanna, Khushwant Singh, Dev Dutt, K.R. Malkani, Yagyadutt Sharma, B.M.Sinha, Dr. Amrik Singh, Dr. Baldev Praksh, I.K. Gujral and Prabhash Joshi.

5. **Delhi Roits: Facts Speak for Themselves A Field study**

   Study team comprised Shyam Khosla, Krishan Lal Maini, Hemant Vishnoi and Dr. Sunil Khetrapal

6. भारत की सामरिक रणनीति को भेदने का षड़यंत्र– अध्ययन

   अध्ययनकर्ता– डॉ.बी.एल.गुप्ता एवं हेमन्त विश्नोई।

7. **The True Story of Dangs- A Field study.**

   Study team comprised Shyam Khosla, Dr. K.S.Arya, Dr. N.K.Trikha and Dr. B.L.Gupta

8. तथ्यों के आईने में डांग का घटनाक्रम–अध्ययन

   अध्ययनकर्ता– डॉ.बी.एल.गुप्ता, श्याम खोसला, डॉ. के.एस.आर्य एवं डॉ. एन.के.त्रिखा।

9. हिन्दू राष्ट्रवाद– आज के संदर्भ में– श्री मोहन भागवत।

10. दलित उत्पीड़न मिर्चपुर– अध्ययन

    अध्ययनकर्ता– राधेश्याम शर्मा, ऋषि सैनी, भूपेन्द्र धरमानी, डॉ. देवव्रत एवं नरेन्द्र सिंह

11. हिन्दुत्व : सत्य, स्वत्व और सत्त्व, डॉ. मनमोहन वैद्य